

## तृतीय अध्याय

तुलसी के काव्य में राजा एवं राजनीति  
का स्वरूप

## तुलसी के काव्य में राजा एवं राजनीति का स्वरूप

किसी भी सभ्यता के विकास और उत्कर्ष में राज्य का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी का साहित्य एक श्रेष्ठ राज्य का स्वरूप प्रस्तुत करता है। तुलसीदास जी का रामराज्य केवल उनकी कल्पना पर आधारित न होकर भारतीय परम्परा पर आधारित है। वेद एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थ ही उनके मूल आधार हैं। गोस्वामी जी की दृष्टि में स्वराज्य धर्मराज्य ही हो सकता है अर्थात् जो राज्य धर्म पर आधारित न हो वह राज्य नहीं है। इसके अतिरिक्त तुलसीदास जी ने अपने काव्य में राजा एवं राजनीति के विभिन्न पहलुओं को बताया है जो मध्यकालीन राज्य के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने में समर्थ हैं।

### साहित्य और राजनीति :-

काव्य विशेष के सांस्कृतिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन से उसके रचनाकालीन समाज का वास्तविक रूप हमारे सामने आता है। इससे जहाँ और रचनाकालीन, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक साहित्यिक स्थितिक का परिचय मिलता है, वहीं दूसरी ओर समाज के विशेष जीवन के परिचालन करने वाले संस्कारों और आदर्शों का ज्ञान प्राप्त होता है।

साहित्य समाज के विचारों का प्रतिबिम्ब होने के कारण इतिहास की अपेक्षा संस्कार—जन्य आदर्शों से अधिक सम्बन्ध रखता है। राजनीतिक संस्थाएँ समाज की रंगमंच हैं जहाँ महापुरुष अपने कार्यों को प्रदर्शित करते हैं। सामाजिक जीवन में इसका अत्यधिक महत्व है। ए०एल०राउज ने इसे इतिहास की रीढ़ माना है।<sup>1</sup>

साहित्यकार को अपने समय की परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। लेकिन परिस्थितियों के प्रभाव का दबाव भी सभी साहित्यकार एक ही प्रकार के चिन्तन के माध्यम से महसूस नहीं करते। साहित्यकार अपने संस्कारों एवं जीवन के अनुरूप ही अपनी प्रतिक्रिया व्यंजित करता है। इस प्रकार उसकी रचना में समकालीन समूचा परिवेश और वातावरण उसकी जीवन दृष्टि के अनुरूप ही उसकी वाणी में अवतरित होते हैं। कलारूप होने के कारण साहित्य अतीत का होकर भी व्यतीत का नहीं हो जाता। उसके वर्तमानता का गुण भी बना रहता है। उससे भविष्य के लिए भी प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। सभवतः इसी संदर्भ में क्रौचे ने इतिहास को वर्तमान का इतिहास स्वीकार किया था।<sup>2</sup>

इस प्रकार जिस समाज में साहित्यकार रहता है और जिस युग के राजनीतिक परिवेश में उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। उसका स्वरूप उसके साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। युग के प्रति जागरक सामाजिक राजनीतिक परिवेश का चित्रण मानव मन का पारखी लोकदृष्टा कवि ही अपने युग और परिवेश की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं रख सकता है। राजनीति का साहित्यकार पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है। प्रथम साहित्यकार किसी एक राजनीतिक विचारधारा का पूर्णरूपेण अनुयायी बन जाता है और उसका साहित्य अपने दल की नीतियों एवं कार्यों का प्रचार करने लगता है। ऐसा साहित्यकार एक प्रकार से प्रचारक का कार्य करने लगता है। दूसरे प्रकार से प्रभावित साहित्यकार युग की समसामयिक राजनीति के प्रभावों को आत्मसात कर अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है। यह ऐसा साहित्य पूर्वाग्रह मुक्त युग का सच्चा दर्पण होता है, क्योंकि उसमें कवि तटस्थ रूप से अपने युग को देखता और साथ में उसका परीक्षण भी करता है। वह अपने संवेदनशील हृदय द्वारा साहित्य में इन परिस्थितियों और उनके प्रभावों को उतारने का प्रयत्न करता है। यह एक वैयक्तिक बात है कि युगीन परिस्थितियों का किस पर कितना कितना प्रभाव पड़ता है और साहित्यकार जितना प्रतिभासम्पन्न तथा जागरूक होगा समुसामयिक घटनाओं एवं गतिविधियों से उतना ही प्रभावित होगा ऐसे साहित्य को सत्साहित्य की संज्ञा से विभूषित किया जाता है क्योंकि इसका प्रभाव समाज पर अल्पकालिक न होकर दीर्घकालिक होता है।

राजनीति और साहित्य परस्पर सम्बन्ध है यह तो सत्य है लेकिन ज्वलन्त प्रश्न यह है कि साहित्यकार का राजनीति से क्या और कितना सम्बन्ध होना चाहिए वह किस विचारधारा से प्रभावित है और किन मानवीय मूल्यों को स्वीकार करता है। क्या उसने राजनीति का सर्वथा व्याग कर दिया है या सम्पूर्ण रूप से राजनीति को समर्पित हो गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्यकार अपने युग की राजनीति से भले ही प्रभावित न हो, परन्तु किसी न किसी रूप में वह समसामयिक राजनीति को अपने साहित्य में चित्रित आवश्यक करता है। इस प्रकार राजनीति और साहित्य का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः साहित्यकार न तो पूर्ण रूप से एक राजनीतिज्ञ होता है और न वह सर्वथा समसामयिक राजनीति की उपेक्षा ही कर सकता है और उसके साहित्य

में अवश्य ही तत्कालीन राजनीति का तथाकिंचित रूप स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि उसकी कृति में चित्रित घटनाएं किसी न किसी रूप में तत्काल राजनीति में उस युग के राजनीतिक प्रतिबिम्ब साहित्य आवश्यक परिलक्षित होता है। चित्रिता से प्रभावित रहती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्य का अपने युग की राजनीति से अवश्य समाध होता है और उस युग का राजनीतिक प्रतिबिम्ब साहित्य पर अवश्य परिलक्षित होता है। यदि कोई साहित्यकार राजनीति के चित्रण से बचना भी चाहे तो भी उसके साहित्य में किसी न किसी रूप में युगीन राजनीति का प्रतिबिम्ब पड ही जाता है और साहित्य की भावधारा में अद्रष्ट रूप से राजनीति समाहित हो ही जाती है। वस्तुतः आज के युग में राजनीति का प्रभाव क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि सवेदनशील साहित्यकार का हृदय उससे असम्पृक्त नहीं रह सकता है।

अतः इस प्रकार अगर मध्यकालीन युग की सामाजिक राजीतिक, धार्मिक, अर्थिक, साहित्यिक स्थितियों का की कृतियों का अनुभव ही अध्ययन करना नितान्त आवश्यक है। मुगल सम्राट अकबर को जानने—पहचानने के लिए उसके पूर्ववर्ती अशोक और चन्द्रगुप्त आदि शासकों की जानकारी जरूरी नहीं है। लेकिन तुलसी दास को समझने के लिए बाल्मीकि को जानना जरूरी है। इसी पहचान के सूत्र को पकड़कर ही बाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस की सही पहचान संभव हो सकती है।<sup>3</sup>

**राजा :-** प्राचीन काल में भारत में राजतंत्र प्रणाली थी। समस्त राष्ट्र की व्यवस्था स्थापन एवं संरक्षण हेतु राजा का होना नितान्त आवश्यक होता है। राजा सदैव अपने मंत्री एवं सभासदों के सहयोग से प्रजा के कार्यों को सचारु रूप से चलाता था। शासन के सभी अधिकार आधुनिक भाषा में विधि—निर्माण, कार्यपालिका, और न्यायपालिका सम्बन्धी कार्य राजा में ही निहित थे, प्रभुसत्त का अधिवाश राजा में ही था। राजा ही सभी प्रकार के अधिनियम व नियम जारी करता था। प्रशासन के सभी अधिकारियों को वही नियुक्त करता था। किन्तु व्यवहार में राजा धर्म से बँधा था और वह कोई कार्य धर्म विरुद्ध नहीं करता था। डॉ ए0एस0 अल्तेकर के अनुसार—राजा की उत्पत्ति कुटुम्ब से हुई है और गृह स्वामी के समान ही राजा का पद वंशानुक्रम होते हुए भी राजा का निर्वाचन जनता के द्वारा होता था।<sup>4</sup> ऋग्वेद में राजपद के चार पीढ़ियों तक वंशानुक्रमिक रूप में पाने के प्रमाण मिलते हैं।

ऐसा होने पर भी योग्यता और शिक्षा के आधार पर राजकुमार, राजपद, की प्राप्ति के योग्य बनता था। राजा के वृद्ध होने पर और उसके द्वारा राजपद के भार को वहन करने की असमर्थता प्रकट करने पर अथवा राजा की मृत्यु के उपरान्त योग्य राजकुमार का राजपद के लिए निर्वाचन होता था। वृद्ध होने पर राजा दशरथ ने राम को प्रजा तथा मन्त्रियों के परामर्श से युवराजपद पर अभिषिक्त करने का निश्चय किया था। तुलसीदास ने रामचरितमानस में राजनीतिक दृष्टि से उस समय प्रजातंत्र का पक्ष उजागर किया है। जो 'पंचहि मन लागहू नीका करहू हरश हिय रामाहि टीका'<sup>5</sup> इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वंशानुक्रमिक होते हुए भी राजा का निर्वाचन जनता के द्वारा होता था। इसी प्रकार राजा नृग ने भी राजपद के लिए अपने पुत्र 'वसु' का नाम पुरोहित मन्त्रियों, और नैगमों के समक्ष प्रस्तवित किया था।<sup>6</sup> इसी प्रकार बालि और सुग्रीव ने भी राजसिंहासन की प्राप्ति के लिए मन्त्रियों का समर्थन प्राप्त किया था। यदि राजा के पुत्र नहीं होता था ऐसी स्थिति में उसका छोटा भाई युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया जाता था। बाल्मिकि रामायण में उल्लेख मिलता है। कि राम के राज्यधिकारी होने पर राम के पुत्र की अनुपस्थिति में राम ने अपने छोटे भाई भ्राता भरत को युवराज पद पर आसीन कराया था।<sup>7</sup> युवराज व राजा के निवचिन की विधि समान थी।

राम के अतिरिक्त तुलसीकृत रामचरितमानस में अन्य राजाओं की भी चर्चा की गयी है। बालि की अनुपस्थिति में ब्राह्मणों और मंत्रियों ने मिलकर सुग्रीव का राज्यभिषेक किया था।<sup>8</sup> बाल्मिकि रामायण में उत्तराकाण्ड में राजा नृग ने प्रजाजनों मंत्रियों तथा पुरोहितों को बुलाकर उनके समक्ष अपने पुत्र को उत्तरधिकारी बनाने का प्रस्ताव रखा था। इस विषय में डॉ० पी०सी० धर्मा लिखते हैं—“ नियम तो यही था कि राजा आनुवांशिक होते थे, परन्तु नये राजा केवल अधिकार के नाते ही उत्तराधिकारी नहीं बन जाते थे, उनका औपचारिक रूप से समिति द्वारा निर्वाचन होता था। एक बार दूसरा राजा ज्येष्ठधिकार के अनुसार पूर्वगामी का उत्तराधिकारी बनता था, परन्तु नए राजा को सर्वप्रथम शासन करने वाला 'राजा और मंत्री नियुक्त करते थे और तब उनका इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन व्यवस्था में लोकतन्त्र का पुट भी विद्यमान था।<sup>9</sup>

तुलसीदास ने अपनी कृति रामचरित्रमानस में रामराज्य रूपी राजा का चित्रांकन किया तथा राजा के गुणों एवं कर्तव्यों पर विशेष प्रकाश डाला। प्राचीन भारतीय विचारको ने राजा को प्रजा का प्रतिनिधि माना है। मनु स्मृति में राजा के आठ

गुणो पर प्रकाश डाला गया है, जो इस प्रकार है—

**इन्द्रानिलयमार्काणमग्नेश्वर वरुणस्य च ।**

**चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्दृत्य शाश्वतीः ।।**

अर्थात् राजा को इन्द्र के समान अपने राष्ट्र की कामनाओं को तृप्त करे प्रजा को भी सुख सुविद्याएँ, ऐश्वर्य प्रदान करे। वायु की तर अपने प्रजा के प्रत्येक प्राणी को जीवित रखने में सहायक हो। यम के समान निष्पक्ष भाव से अपराधियों को दण्ड दे। जिस प्रकार कर्मफल का समय आने पर यमराज प्रिय और शत्रु सबको धर्मपूर्वक अर्थात् न्यायानुसार दण्डित करता है या मारता है। सूर्य के समान प्रजा से कर ग्रहण करे। वरुण के समान प्रजा को नियमों पर चलाये। चन्द्रमा को प्रसन्न रखे। अग्नि जिस प्रकार अशुद्धि का नाश करने वाले वाली और तेजयुक्त होती है। उसी प्रकार राजा अपराध हानि, एवं दुष्टता करने तथा प्रजा को पीडित करने वाले को दण्ड दे। पृथ्वी के समान राजा सब प्रकार के प्रणियों को समान रूप से धारण करें।<sup>10</sup> तुलसीदास ने भी देव रूप इन आठों को नाभित करते रामचरितमानस में इस प्रकार वर्णन किया है। —

**रवि ससि, पवन, वरुण, धनधारी । अग्नि काल जब सब अधिकारी।<sup>11</sup>**

महाभारत में राजा के छत्तीस गुणों पर प्रकाश डाला है। जो इस प्रकार है।  
(1) राजा धर्म का आचरण करे, किन्तु कटुता न आने दे। (2) आस्तिक रहते हुए दूसरे के साथ प्रेम का वर्ताव न छोड़े। (3) क्रूरताका आश्रय लिये बिना ही अर्थसंग्रह करे। (4) मर्यादा का अतिक्रमण न करते हुए ही विषयो को भोगे। (5) दीनता न लाते हुए ही प्रिय भाषण करें। (6) शुखीर बने, किंतु बढचढ कर वाते न बनावे। (7) दान दे, परन्तु अपात्र को नहीं। (8) स्पष्ट व्यवहार करें परन्तु कठोरता न आने दे। (9) दुष्टों के साथ मेल न करें, (10) बन्धुओं से कलह न ठाने, (11) जो राजभक्त न हो ऐसे दूत से काम न ले। (12) किसी को कष्ट पहुँचाये बिना ही अपना कार्य करे। (13) दूष्टों से अपनी वात न कहे। (14) अपने गुणों का वर्णन न करें। (15) साधुओं का धन न छीने (16) नीचांगगगगगे का आश्रय न लें। (17) अच्छी तरह जाँच किए विना दण्ड न दे। (18) गुप्त मन्त्रणा को प्रकट न करे। (19) लोभियों को धन न दे, (20) जिन्होंने कभी अपकार किया हो उनमें विश्वास न करे। (21) किसी से ईर्ष्या न करे और स्त्रियों की रक्षा करे। (22) शुद्ध रहे और किसी से घृण न करें। (23) स्त्रियों का बहुत अधिक सेवन न करे। (24) स्वादिष्ट होने पर भी जो अहित कर से उसे न खाय। (25) निरभिमान होकर माननीयो

को सम्मानित करे। (26) गुरु की निष्कपट सेवा करे। (27) दम्भहीन होकर पूजन करे। (28) अनिन्दित उपाय से लक्ष्मी प्राप्त करने की इच्छा रखे। (29) स्नेह पूर्वह बड़ो की सेवा करे। (30) कार्यकुशल हो, कितु अवसर का विचार रखे (31) केवल पिंड छुडाने के लिए किसी से चिकनी चुपडी बाते न करे। (32) किसी पर कृपा करते समय आक्षेप न करे। (33) बिना जाने किसी पर प्रहार न करे। (34) शत्रुओ को मार कर शोक न करे, (35) अकस्मात क्रोध न करें, (36) जिन्होंने अपना अपकार किया हो उनके प्रति कोमलता का वर्ताव न करें।<sup>12</sup> इस प्रकार जिस राजा में इन गुणों का अभाव होता है, उसे शुक्रार्चा के अनुसार जैसे साँप बिल में रहने वाले चुहों को निगल जाता है, उसी प्रकार गुणहीन राजा को पृथ्वी निगल जाती है।<sup>13</sup> भागवत गीता में श्री कृष्ण भी नारणांच नराधिपम के भाव का पक्ष लेते हुए राजा में छः गुणों का प्रतिपादन करते हुए कहते है।

**ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।**

**ज्ञानवैरागयोश्चैव षण्णा भग इतीरिणार।।<sup>14</sup>**

उनके अनुसार राजा में ऐश्वर्य, यश, धर्म, श्री, ज्ञान, वैराग्य धर्मशीलता आदि गुण होने चाहिए। भर्तहरि भी अपनी कृति नीतिशतक में राजा के विशिष्टि गुणों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं।—“ हे राजनः यदि पृथ्वी रूपी धेनु को दुहना चाहते हो तो भली भाँति पालन पोषण करोगे तो कल्पलता के समान यह भूमि तुम्हें अनेक प्रकार के फल प्रदान करेगी<sup>15</sup> विदुर नीति में विदुर धर्मराष्ट्र को समझाते हुए कहते हैं कि हे राजन जिसमें, बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय—निग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण छोते है, वे इहलोक और परलोक दोनों में सुख भोगते हैं।

रावण के मतानुसार तेजस्वी राजा अग्नि, इन्द्र, सूर्य, यम, और वरुण इन पाँच देवताओ के अंश धारण किये रहते हैं और उनमें इस पाँचो के गुण प्रताप, पराक्रम, सौम्य स्वभाव, दण्ड और प्रसन्नता विधमान रहते हैं। अतः हर दशा में राजाओं का सम्मान करना चाहिए।<sup>17</sup>

बाल्मीकि रामायण में राजा दशरथ राम के प्रजासम्भत युवराज मनोनीत करके राम के माध्यम से राजा के गुणों का बखान करते हैं। श्रीराम में सत्यवादी सत्य परायण, सत्पुरष, धर्मज्ञ, प्रजा को सुख देने में चन्द्रमा रूपी क्षमा में पृथ्वी के समान, बुद्धि में बृहस्पति बल में इन्द्र के समान शील वान अदोषदर्शी, शान्त दीन, दुखियों को सान्तवा

प्रदान करने वाले मृदुभाषी, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव वाले स्थिरबुद्धि प्राणियों के प्रति दयावान है। ये यथोचित गुण एक राजा में होने चाहिए।<sup>18</sup> शुक्रनीति के प्रणेता शुक्राचार्य का कहना है कि राजा में पिता, माता, आचार्य, भाई, मित्र कवेर तथा यम के गुणों का मिश्रण होना चाहिए।<sup>19</sup>

तुलसीदास ने भी अपने काव्य रामचरितमानस में राजा के विशद गुणों पर प्रकाश डाला है— पिता दशरथ की मृत्यु से दुखी भरत को समझाते हुए वशिष्ठजी कहते हैं कि राजा दशरथ शोचनीय नहीं है, वह है जिसके हृदय में प्रजा के प्रति अथाह प्रेम न हो।<sup>20</sup> राजा की सर्वोपरि विशेषता यह है कि वह धर्मशील हो बिना धर्म के राजा नहीं है। उसे धर्म सम्मत मार्ग पर ही सतृप्त आरूढ रहना चाहिए।<sup>21</sup> भानुप्रताप का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि वह गुणग्राही और बिन गुणग्रही और विनयशील राजा था। गुरुजन और विद्वानों का सम्मान करना उसके स्वभाव का एक अंग था।<sup>22</sup>

इस प्रकार तुलसी की दृष्टि में राजा आतातायी जनों के दहन—हेतु अग्नि स्वरूप देव ब्राह्मण एव गौ का हितकर्ता, विनयशील, करुणा आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।

तुलसीदास वैदिक और रामायण—काल में प्रचलित राजतंत्र प्रणाली में अखण्ड आस्था रखते थे। तुलसी के काव्य रामचरितमानस में विभिन्न राजाओं को दशरथ, जनक, भरत, राम को सर्वशाक्तिमान माना गया है। शासन के सभी अधिकार आधुनिक भाषा में विधि—निर्माण, कार्यपालिका और न्यायपालिका सम्बन्धी राज्य में ही निहित थे। प्रभुसनत का अधिवास राजा में ही था। राजा ही सब प्रकार के अधिनियम व नियम जारी करता था। प्रशासन के सभी अधिकारियों को वही नियुक्त करता था। किन्तु व्यवहार में राजा धर्म से बँधा था और कोई भी कार्य वह धर्म विरुद्ध नहीं करता था। राजा अपने कर्तव्यों के पालन में गुरु, पुरोहित, सचिव तथा मंत्रियों से परामर्श करके प्रजा हित कार्य करता था।

राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि राजा प्रजा का योग्य रीति से पालन करे। वह अन्न को प्रजा जन तक पहुँचाए। किसी को भूखा न रखे, समस्त धन का अधिकारी हो, ज्ञान को बढत्रावे, राज्य,—शासन रूप का सुचारू रूप से निर्वहन करें, क्रूरकर्मा दुष्टों का नाश करें, अपने राज्य के ज्ञानी—धनिक—कर्मकार आदि जनता को उत्तम रीति से रखे, सत्य तथा धर्म से राज्य करें। इस

प्रकार राज्य शासन कर प्रजा जन का प्रिय बने।<sup>23</sup> अन्यत्र भी कहा गया है— राजा उत्तम रक्षक अपने सामर्थ्य पर विश्वास रखने वाला, धनवान, प्रजा, की रक्षा करके शत्रुओं से रक्षा करने वाला हो। प्रजा को अभय दे और धन सम्पन्न करें।<sup>24</sup>

शुक्रनीति में राजा के कर्तव्य इस प्रकार बताये गए हैं — दुष्टों को दण्ड देना, दान, प्रजा का परिपालन, राजसुय आदि यज्ञों का अनुष्ठान, न्यायानुसार कोष का अर्जन, अन्य राजाओं को वश में रखना, शत्रु का परिमर्दन, भूमि का उपार्जन आदि।<sup>25</sup>

महाभारत में पितामह भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि — उस राजा को सर्वश्रेष्ठ कहना चाहिए जिसके राज्य में पिता के घर में पुत्र की भाँति प्रजा निर्भय विचरती है।<sup>26</sup> पितामह भी अनुसार राजा को सदैव उद्यमशील रहना चाहिए। जिसके साथ संधि करना उचित है, उसके साथ संधि करनी चाहिए। जिससे विरोध उचित है, उससे विरोध करना चाहिए। जिससे विरोध उचित है, उससे विरोध करना चाहिए। चारों वर्णों के धर्म की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है, क्योंकि धर्म संकट होने से प्रजा को बचाना ही राजा का सनातन धर्म है। जो राजा सदा प्रजानुरंजन में प्रवृत्त रहता है। वह कभी भी शत्रुओं से पराजित होकर स्थान-भ्रष्ट नहीं होता। श्रेष्ठ राजा का कर्तव्य है कि उसके राज्य में कही भी चोरी, डकैती, माया, मत्सर, और अधर्म आदि न हो। उसे सदा ही सनातन धर्म का पालन करना चाहिए।<sup>27</sup> का मान्दकर ने नीतिसार में कहा है कि शास्त्रज्ञान के निमित्त गुरु-संयोग, विनय, बुद्धि हेतु शास्त्र अभ्यास राजा को करना चाहिए। वृद्ध सेवी राजा संकट पडने पर भी दुःखी नहीं होता प्रजा हित में ही अपना जीवन सफल समझता है।<sup>28</sup>

कालिदास के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि अपने सुख को तिलांजलि दे दूसरों को सुखी रखे। राजा के तीन मुख्य कार्य थे— राष्ट्ररक्षा, राष्ट्रशिक्षा और राष्ट्र की अर्थिक उन्नति। राजा सच्चे अर्थों में प्रजा का पिता कहलाता था। कवि ने राजा दिलीप का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'वे नम्रता अदि की शिक्षा देने आपत्तियों से बचाने और अन्नादि से पोषण करने के कारण प्रजा के पिता हुए।'<sup>29</sup>

बाल्मीकि रामायण में भरत से मिलने के पश्चात् राम राजा के अनुष्ठेय आचरण के विषय में कहते हैं कि— हे भरत, तुम अयोध्या की भली-भाँति रक्षा करते हो न। समस्त जन-पद तो सुखी हैं जो खेती कर पशुओं को पाल अपना जीवन-निर्वाह करते हैं उन पर तुम प्रसन्न तो रहते हों तुम उनको इष्ट वस्तु प्रदान कर तथा उनका

उचित भरण—पोषण करते हो, क्योंकि राजा को उचित है कि वह अपने राज्य में बसने वालों की धर्म और ईमानदारी से रक्षा करे। देखो जो नीतिज्ञ और शासन—दण्ड धारी राजा धर्मानुसार प्रजा का पालन करता है वह ज्ञानी पूर्व राजाओं की भाँति सम्पूर्ण पृथ्वी का स्वामी होता है मरने पर स्वर्ग में वास करता है।<sup>30</sup>

इस प्रकार तुलसीदास भी राजा के लिए प्राचीन पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित कर्तव्यों का ही समर्थन करते हैं। श्रीराम लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं— जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी रहती है वह गर्हित है, नाना दुख भोगता है।<sup>31</sup>

चित्रकूट राम—भरत मिलन प्रसंग में राम भरत को समझाते हैं कि — मुखिया—राजा के मुख के सदृश होना चाहिए। जिस प्रकार शरीर में खाता तो सब कुछ अकेला मुख ही है परन्तु वह अपने पास कुछ नहीं रखता तथा सब अंगों को यथा योग्य बाँट देता है, जिससे प्रत्येक अवयव की पुष्टि होती रहती है, उसी प्रकार राज्य की समस्त आय का अधिकारी राजा होता है, परन्तु राजा का कर्तव्य है कि वह अपने पास कुछ भी न रख कर जनहित कार्यों पर व्यय करे।<sup>32</sup>

राजा के आवश्यक कर्तव्यों में से एक यह भी है कि वह प्रजा में योग्य परिमाण से वसु—विभाग करे। धन की विषमता न हो, अर्थात् धन विषय परिमाण न बाँट जाये। धन अधिकार ज्ञान जाति आदि की विविध प्रकार की विषमता होती घातक होती है। राजा राम की जागरूकता एवं नीति—नियुणता से प्रजा में सभी प्रकार की विषमता का पूर्ण अभाव था और अवध की समस्या प्रजा प्रसन्न थी।<sup>33</sup>

प्रजा —जन को शुभ संकल्पयुक्त बनाना भी राजा का प्रमुख कर्तव्य है। राज्य में शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध हो स्त्रियाँ पुरुष और बच्चे उत्तर विचार वाले बने। प्रजा को सदाचारी, शिष्य बनाने के लिए आवश्यक है कि राजा भी माता—पिता, भाई बन्धु, हरिजन, पुरजन के साथ योग्य एवं शिष्ट व्यवहार करे।<sup>34</sup>

इस प्रकार निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि तुलसी राजा में उच्च गुण व प्रजहित कर्तव्यों का ही समर्थन करते हैं। उनके अनुसार राजा के आचरण का प्रभाव प्रजा पर पड़ता है।

**दौत्य—कर्म:**— प्राचीन काल से ही दौत्य—कर्म का अस्तित्व रहा है। रामायण और महाभारत में भी हमें दौत्य—कर्म के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण मिलते हैं। बाल्मीकि रामायण में हनुमान और अंगद ने दौत्य—कर्म किया था। महाभारत में श्रीकृष्ण और संजय ने

विभिन्न आवसरों पर किसी न किसी प्रकार का दौत्य किया। अश्वमेधः राजसूर्य, बाजपेय आदि यज्ञों के अवसरों पर यज्ञ करने वाले राजा के राजदूत और सन्देशवाहक एक राज्य से दूसरे राज्य में यज्ञ के लिये आमंत्रण देने जाते थे।<sup>35</sup>

कौटिल्य ने 'दूत को राजा का मुख' कहा है। उसी के माध्यम से राजा पारस्परिक वार्ता विनियम करते हैं।<sup>36</sup>

बाल्मीकि के शब्दों में —'जो राजा चतुर होते हैं, वे दूतों के ही द्वारा अपने शत्रु का समस्त हाल जानकर रण में अल्प प्रयास से ही शत्रु को भगा देते थे।<sup>37</sup>

दूत के गुण और कार्य के विषय में ऋग्वेद में कहा गया है कि जो एक राज्य से दूसरे राज्य में जाता है और वहाँ अपने राजा का सन्देश पहुँचाता है और अपने राजा का कार्य करता है, वह उत्तम राजदूत होता है और ऐसा राजदूत अग्नि है। दूत तेजस्वी हो, कार्य को अन्त तक पहुँचाने वाला, अपना भाव उत्तम रीति से रखने में समर्थ पर राष्ट्र में जाकर वहाँ के कार्यकर्ताओं पर अपने ज्ञान से प्रभाव डालने वाला, तरुण हो अथवा तरुण समान बलवान एवं ओजस्वी हो, अग्नि ज्वाला के सदृश ओजपूर्ण भाषण करने वाला, सत्य धर्म का पालन करने वाला और अपने राजा को सुखी करने वाला है।<sup>38</sup>

तैत्तिरीय संहिता में भी कहा गया है। कि अग्नि देवो का दूत था— अग्निः देवान दूत आसीत्। जैसा अग्नि यज्ञ में दत्त—कर्म करता है, वैसा राज्य शासन रूपी यज्ञ में दूत कर्म करे।<sup>39</sup>

महाभारत में भीष्म पितामह ने कहा है कि जो पुरुष कलीन, वाग्मी, दक्ष, प्रियभाषी, यथोक्तवादी और स्मृतिवान हों, वही दूत—पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए।<sup>40</sup>

शुक्रनीति में कहा गया है कि दूत इंगित, आकार चेष्टा का जानने वाला, स्मृतिमान, देश काल ज्ञाता, सन्धि विग्रह आदि की बातें करने में समर्थ, वाग्मी और निर्भीक होना चाहिए।<sup>41</sup> कामन्दकीय नीतिसार में दूत को जिज्ञाषु, चतुर, वाग्मी और निर्भीक होना बतलाया है। कौटिल्य के अनुसार दूत शत्रु—राजा द्वारा प्रदान किए गये सम्मान पर गर्व न करे, शत्रुओं के मध्य रहता हुआ अपने को बलवान न समझे, किसी के कुवाक्य को भी पी ले, स्त्री—प्रसंग और मद्यपान को सर्वथा त्याग दे, शत्रु राजाओं के रहस्यों को पता लगाना और पूछे जाने पर भी अपने मंत्रियों का पता न दे।<sup>42</sup>

दूत के कार्यों का कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णन किया गया है कि— शत्रु देश में अपने स्वामी का सन्देश लेकर जाना, उसका उत्तर लेकर आना, समय पडने पर अपने पराक्रम को दिखाना, शत्रु पक्ष के अच्छे पुरुषों को अपने पक्ष में कर लेना, शत्रु के मित्रों को उससे विमुख कर देना शत्रु देश में रह कर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना आदि।<sup>43</sup> मनु के अनुसार राजाओं के मध्य सन्धि और विग्रह के कार्य दूत ही करता है, वही राजाओं में मेल करता है और मिले हुआ में भेद भी उत्पन्न करता है।<sup>44</sup>

किन्तु शास्त्रों में कहा गया है कि दूत अवध्य होता है। महाभारत में कहा गया है कि राजा किसी भी आपद में भी दूत का कभी वध न करें, क्योंकि दूत को मारने वाला राजा नरकगामी होता है।<sup>45</sup> बाल्मीकि रामायण में रावण के दूत राम से कहते हैं, 'हे साधु' हे काकुस्थ दूत नहीं मारे जाते अतः इन वानरों को रोकिये। तब राम ने वानरों से कहा तुम दूत के प्राण मत लो।<sup>46</sup>

इस प्रकार दूत को अख्य कहा गया है। तुलसी के काव्य में भी हमें दौत्य कर्म के अनेक उदहारण मिलते हैं। सीतान्वेषण का कार्य दूतों द्वारा ही सम्भव था। श्री राम की इच्छानुसार सुग्रीव ने आदि को दूत कार्य दिया। उनका सम्मान कर कार्य निर्दिष्ट किया।<sup>47</sup> तदन्तर सब आज्ञा शिरो धार्य कर चल दिए। शत्रु नगरी में जाकर हनुमान ने लंकेश्वर के महल का पता लगाया था। दरबार में रावण के प्रश्न कवन ते कीसा का उत्तर देते हुए हनुमान अपूर्व वाकपटुता से अपने स्वामी का परिचय देते हैं। मैं उन्हीं राम का दूत हूँ जिनकी पत्नी का तुमने अपहरण किया है। राजदरबार में बन्धक ग्रसित हनुमान की निर्भीकता का अवलोकन कर रावण भी उठता है। देखाँ अति असंक सठतोहि<sup>48</sup> दूत को तो हर समय स्वामी के कार्यों की चिन्ता रहती है। इसके लिये न वह अपने कष्टों की तनिक भी चिन्ता करता है न किसी कार्य में लज्जा अनुभव करता है।<sup>49</sup> लंका-भूमि में ससैन्य अवतरित होने पर जामवंत के सुझाव पर अंगद को दौत्य कर्म के लिए भेजते हुए श्रीराम कहते हैं, हे तात! तुम बुद्धि बल और गुणों के निधान हो। इस अवसर पर तुम्हें बहुत क्या समझा कर कह। तुम अत्यन्त चतुर हो यह मैं जानता हूँ, शत्रु के साथ वही बातचीत करना, जिससे हमारा काम हो और उसका हित हों।<sup>50</sup>

जनकपुर से विवाह की पत्रिका लेकर आये हुए दूतों का उल्लेख भी हमें तुलसी के काव्य में मिलता है। दशरथ ने गुरु जी आदेश से समस्त सभा के समक्ष उस पत्रिका को पढ़ा और उन दूतों से राम लक्ष्मण के विषय में तथा राजा जनक के विषय

कुशल समाचार पूछा। तत्पश्चात् लोकाचार के अनुसार निछावर देकर सम्मान से उनके आवास का प्रवन्ध किया था।<sup>51</sup> इस प्रकार इस दौत्य कर्म से स्पष्ट होता है कि दो राजाओं के मध्य विग्रह का प्रमुख साधन दूत ही होता था। और ये दूत निर्दिष्ट कार्य अति दक्षता एवं कौशल में करते थे। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि राज्य के लिए दूत की कितनी महत्ता एवं उपादेयता थी। ये दूत होकर भी शत्रु-प्रदेश में जाकर शत्रु की गुप्त बातों का, शत्रुओं के योद्धाओं तथा बन्धु वान्धवों को अपने पक्ष में करने का कार्य करते थे।

राष्ट्र का उत्थान देश की समृद्धि और उसका सर्वांगीण विकास राजा और प्रजा के घनिष्ठ सम्बन्धों पर निर्भर करता है। राज्य परिवार का ही विकसित रूप है। जिस प्रकार परिवार की पूर्णता पारस्परिक सहयोग, समर्पण सेवा और सुमति पर निर्भर है उसी प्रकार राज्य का चरम आदर्श राजा और प्रजा के निकटतम सम्बन्धों पर निर्भर होता है। प्राचीन साहित्य में अनेक सुख-समृद्धिपूर्ण राज्यों का वर्णन मिलता है। ऐसे राज्यों की व्यवस्था और पद्धति का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनमें राजा और प्रजा के बीच सम्बन्ध अत्यन्त आत्मीयतापूर्ण और सौहार्दयुक्त थे। राजा वस्तुतः प्रजा के निमित्त जीवन धारण करता था और प्रजा राजा के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने को तत्पर रहती थी। राजा का सुख समस्त प्रजा का सुख था और प्रजा के उत्सव राजा के जीवनोत्सव होते थे। इसी प्रकार राजपरिवार का विशाद समस्त प्रजा के लिए दुस्संवाद बन जाता था और प्रजा की पीड़ा समस्त राजपरिवार के लिए चिन्ता का विषय होती थी। यजुर्वेद में कहा गया है कि प्रजा के आश्रय से राजा सुप्रतिष्ठित होता है।<sup>52</sup>

यदि प्रजा नहीं है तो राजा के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं, राजा न होने की अवस्था में भी प्रजा रह सकती है। अतएव: राजा का कल्याण प्रजा के कल्याण में निहित है। महाभारत में भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि “इस लोक में प्रजावर्ग को प्रसन्न रखना ही राजाओं का सनातन धर्म हैं, सत्य की रक्षा और व्यवहार की सरलता ही राजोचित कर्तव्य है।<sup>53</sup> शुक्रनीति में कहा गया है कि “यदि एक राजा उत्तम रीति से प्रजा का पालन नहीं करता, अपनी प्रजा के दुख-सुख में भागीदार नहीं होता और उनके हितों की रक्षा नहीं करता तो ऐसा राजा नाकारा होता है। उसकी स्थिति उसी प्रकार होती है, जैसे एक नाविक के अभाव में नौका सागर में डूब जाती है। अतः भाव यही है कि प्रजा के हितों की चिन्ता करने वाला राजा ही श्रेष्ठ होता है।<sup>54</sup>

सुरसागर में कहा गया है कि राजा का धर्म केवल इतना ही है कि प्रजा को किसी प्रकार भी सताया न जाए।<sup>55</sup> मनुस्मृति में स्मृतिकार ने कहा है कि वह राजा योग्य है जो अपने प्रभाव के कारण अग्नि के समान अपराधियों का विनाश करने वाला, और वायु के समान गुप्तचरों द्वारा सर्वत्र गतिशील होकर प्रत्येक स्थिति की जानकारी रखने वाला, सूर्य की किरणों के समान जल ग्रहण करें चन्द्रमा के समान प्रजा को सुख दे, धर्मराज के अनुसार न्याय करे, वह राजा-प्रजा के लिए सर्वथा वन्दनीय है।<sup>56</sup>

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजा का पहला कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न रखना है, राजा का कोई अपना हित या सुख नहीं होना चाहिए। वह तो प्रजा की सुख सुविधाओं एवं प्रजा के अभीष्टों की व्यवस्था करने वाला एक व्यवस्थापक मात्र है। अर्थात् राजा के लिए प्रजा ही सबकुछ है।<sup>57</sup> इस प्रकार भारतीय राजा प्रजा के साथ धर्मबन्धन में बंधा हुआ है प्रजा हित ही उसका मुख्य ध्येय है। तुलसी के काव्य में रामचरितमानस में राजा दशरथ जनक, राम, भरत, सुग्रीव, सभी प्रजा का विधिवत पालन करते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं कि भारतीय सभ्यता के बीच राजा धर्म शक्ति स्वरूप है, फारस और कावुक के बादशाहों के समान केवल धनबल और बाहबल की पराकाष्ठा मात्र नहीं। यहाँ राजा सेवक और सेना के होते हुए भी शरीर से अपने धर्म का पालन करता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि प्रजा की पुकार संयोग से उसके कान में पड़ती है, तो वह आप ही रक्षा के लिए दौड़ता है, ज्ञानी महात्माओं को देख सिंहासन छोड़ खड़ा हो जाता है, प्रतिज्ञा के पालन के लिए शरीर पर अनेक कष्ट झेलता है, स्वदेश की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में सबसे आगे दिखाई पड़ता है, प्रजा के सुख-दुख में साथी होता है। ईश्वरांश माने जाने पर भी मनुष्यांश नहीं छोड़ता है। वह प्रजा के जीवन से दूर बैठा हुआ उसमें किसी प्रकार का योग न देने वाला खिलौना या पुतला नहीं है। प्रजा अपने सब प्रकार के उच्च भावों का त्याग का, शील का पराक्रम का सहिष्णुता का, क्षमा का प्रतिविंब उसमें देखती है।<sup>58</sup>

राजपति दीक्षित के शब्दों में तुलसी प्रजा के प्रति राजा की वात्सल्य भावना को ही उपयुक्त समझते हैं। वात्सल्य की भावना में स्वमितत्व का दम्भ और अहंकार आपसे आप लीन हो जाते हैं। राजा के लिए प्रजा प्रिय है, राजा को उसका प्रेमी होना चाहिए। राजा भी प्रजा के लिए प्रिय हो, यह उसके कर्मों और व्यवहार पर अश्रि है। राजा की समता जब पिता से है तो उसके साथ ही उसमें प्रजा के लिये पालकत्व का

गुण भी होना चाहिए। यों तो राजा सबके लिये समदर्शी होना चाहिए पर उसके लिए सम वितरण आवश्यक नहीं। मुखिया, मुख सो – वह मुखिया है, और मुख की भाँति सब कुछ ग्रहण करके भी वितरण अंगो की आवश्यकता और उपयोगिता की दृष्टि से करता है। इससे भी स्पष्ट हो जाता है। कि राजा में पितृत्व ही मान्य है, मातृत्व नहीं। माता सन्तति के लिए अविवेक से भी काम ले सकती है, पर पिता जैसी उसके गुण धर्म की भारतीय भावना है, विवेक से काम लेने वाला है।<sup>59</sup>

तुलसी राजा और प्रजा में पिता-पुत्र का सा सम्बन्ध मानते हैं। 'प्रजा शब्द' का अर्थ 'सन्तति' इससे भी इसी भाव की पुष्टि होती है। पुण्य की निधि प्रजा पालक राजा दशरथ के राज्य में प्रजा धनधान्य से सम्पन्न थी। राजा को प्रजा प्रिय थी और प्रजा को राजा प्रिय था। राजा और प्रजा दोनों मिलकर अपने को एक परिवार के भीतर ही समझते थे। राजा के पुत्र-जन्म का समाचार का पाकर समस्त अयोध्या वासी आनन्दभ्रमण हो गये ध्वजा, पताका और वन्दनवार से सारी अयोध्यापुरी छा गयी नगर के सारे स्त्री-पुरुषों के मन में अत्याधिक आनन्द है। यह राजा-प्रजा का अटूट प्रेम सम्बन्ध है।<sup>60</sup> राज्याभिषेक के समय पर जब राम को वनवास दिया जा रहा है। तो यह समाचार सुनकर प्रजा पर जैसे वज्रपात हो गया है, सारा नगर विलख उठा है। लोग विषय ताप से जलते गहरी-गहरी उच्छवास लेते हैं और कहते हैं कि राम के बिना अब जीने की कोई आशा नहीं है। सरोवर का जल सूखने पर जलचर-सदृश सारी प्रजा अथाह दुख सागर में निमग्न थी।<sup>61</sup> वन जाते समय राम को कोई चिन्ता थी तो प्रजा की साथ जाने के लिये इच्छुक भाई लक्ष्मण को भी वह इसीलिये साथ नहीं ले जाना चाहते कि अयोध्या सर्वथा अनाथ हो जायेगी। कहते हैं कि यहीं रह कर गुरु, पिता, माता, प्रजा, और परिवार सबको सन्तुष्ट रखना। उन्हें अपनी सुध बुध नहीं है, सर सरिता, वन-बाग में कौन जाये, वे सूने पड़े हैं। इसीलिये जब भरत ननिहाल से वापस आये तो उन्हें अवध पुरी श्रीहीन प्रतीत हुई। नगर के नर-नारी सब ऐसे खिन्नचित्त दीख पड़े मानो अपनी सारी सम्पत्ति खो दी है।<sup>62</sup>

राजसिंहासन पर आसीन होने के पश्चात राजा राम के आदर्श चरित्र एवं व्यवहार अयोध्या की समस्त प्रजा सुखी है, वह कोई भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहती जिससे राजा राम को दुख पहुँचे एक और श्रीराम के महान चरित्र से आर्कषित होने वाली प्रजा है तो दूसरी और शरीर तक को देकर उसकी रक्षा करने वाला राजा

है। जिन गुणों से प्रजा अपना मंगल समझती है उनका पूर्ण विकास अपने राजा में देख वह मुग्ध हो जाती है और सदाचार की और प्रवृत्त होती है।<sup>63</sup> अतः इस प्रकार हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तुलसी के काव्य में राजा-प्रजा में परस्पर अभिन्न सम्बन्ध थे। प्रजा जन के कल्याण होने से ही वस्तुतः राजा का कल्याण सम्भव है अथवा नहीं। यद्यपि बल व शक्ति के प्रयोग से लोक पर शासन किया जा सकता है। किन्तु पाशिवक बल से जनता के हृदय को विजित नहीं किया जा सकता। हृदय-सम्राट् अर्थात् को जनप्रिय शासक बनने के लिए आवश्यक है कि राजा का जन-जन से सम्पर्क हो। वह प्रजा की पीर अपनी पीर समझे और उसके निवारण हेतु उसके अपूर्ण बल एवं पराक्रम हो। जन प्रिय शासक केवल वही हो सकता है जिसमें जनता जनार्दन के निमित्त अपना जीवन समर्पित कर दिया हो, जो त्याग एवं बलिदान की साकार प्रतिमा है, जिसका हृदय असीम प्रेम से पूरित है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार राज्य का सर्वोपरि कर्तव्य प्राणियों को उनके उचित अधिकारों के उपभोग करने तथा कर्तव्यों के पालन किये जाने के लिए अधिक से अधिक सुविधा प्रदान करना है। इस उद्देश्य के निमित्त आवश्यक है कि राज्य में न्याय की समुचित व्यवस्था हो। डॉ. श्यामलाल पाण्डेय के अनुसार 'न्याय व्यवस्था के द्वारा उन लोगों की खोज की जाती है, जो स्वधर्म पालन-कार्य में विध्न-बाधायेँ उपस्थित करते करते हैं और दूसरों के अधिकार क्षेत्र पर आक्रमण करके मनुष्य-मनुष्य के मध्य कलह उत्पन्न करते हैं। इस व्यवस्था के संघटन के द्वारा इस प्रकार उत्पन्न कलह के मूल कारणों का पता लगाया जाता है और उनके निराकरण हेतु दोषियों को उनके दोष के अनुसार दण्ड-विधान किया जाता है। कौटिल्य इसी परम्परा के पोषक है।<sup>64</sup>

विदुर नीति में कहा गया है कि राज्य में न्याय व्यवस्था ही राजा की सर्वश्रेष्ठता का गुण है- अन्याय में स्थित हुआ राजा बाप दादों का राज्य पाकर भी अपने ही कर्मों से उसे इस तरह भृष्ट कर देता है जैसे हवा बादल को छिन्न भिन्न कर देती है।<sup>65</sup> ऐवरेय ब्राह्मण में कहा गया है -समाज कितना भी सुसंस्कृत उन्नत और समृद्ध क्यों न हो व्यक्तियों में विकारों की प्रधानता के कारण एवं स्वार्थ लिप्सा के कारण परस्पर किसी न किसी विषयों पर विवाद हो ही जाता है। उनके विवादों को निपटाने के लिए और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए न्याय की आवश्यकता होती है। न्याय

से राज्य का अस्तित्व निर्भर है। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि राजा का स्वयं अस्तित्व भी विधिपालन तथा न्याय करने में होता है।<sup>66</sup> बाल्मिकि रामायण में उल्लेख आता है कि अराजक राज्य में न्याय न होने से अन्याय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिसमें राज्य का अस्तित्व सम्भव नहीं होता है।<sup>67</sup> मनु स्मृति में न्याय व्यवस्था के विषय में स्मृतिकार ने कहा है—“राज्य के द्वारा नागरिकों के पारस्परिक विवादों का इस प्रकार से निर्णय करना चाहिए कि सभी व्यक्तियों में सुरक्षा की भावना और न्याय के प्रति विश्वास उत्पन्न हो। राज्य और सम्बन्धित अधिकारियों को न्याय प्रदान करने में भावना और दुर्भावना से दूर रहते हुए पूर्ण निष्पक्षता के साथ न्याय किया जाना चाहिए। इस प्रकार धर्म एवं नीति पर आधारित न्याय को प्रतिष्ठित करना ही राज्य का परमकर्तव्य है। किन्तु दोषियों के दोष के आधार पर ही दण्ड देना चाहिए यह न्यायिक व्यवस्था का परम धर्म है।<sup>68</sup>

तुलसीदास का भी अभिमत है कि दण्डनीय व्यक्ति को अवश्य दण्ड मिलना चाहिए, क्योंकि असदवृत्तियों का तब तक अपने समाज विरोधी कर्मों को नहीं त्यागता है जब तक उसे दण्ड का भय नहीं होता।<sup>69</sup> राम ने समस्त दुष्टों का विनाश कर न्याय की स्थापना कर दी है। गीतावली के अनुसार राजा राम नित्य प्रति धर्मासन पर विराजते हैं और बड़ी सर्तकता व कुशलता के साथ नीति सम्मत न्याय करने में रत रहते हैं। वे मनुष्यों की नहीं पशुपक्षियों की भी शिकायत सुनकर न्याय की व्यवस्था करते हैं।<sup>70</sup>

तुलसीदास के अनुसार राज्य की न्याय प्रणाली अत्यन्त सरल सुविधा और सर्वग्राही होनी चाहिए। तुलसी ने विनय—पत्रिका में न्याय व्यवस्था का उल्लेख इस प्रकार किया है एक वन में एक उल्लू और एक बगुला एक स्थान पर रहते थे। एक दिन उल्लू ने बगुला के घर पर अधिकार करना चाहा। उसने बगुला से कहा—यह मेरा घर है, इसे तुम खली कर दो, नहीं मानते हो तो चलो राजा से न्याय करा लें। दोनों राजा के पास जाकर अपना—अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं। राजा राम ने आसन पर बैठकर उल्लू से पूछा—तू इस घर में कब से रहता है। उल्लू ने उत्तर दिया— है महाधर्माध्यक्ष। जब से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है, तब से मैं रहता हूँ। बगुला से पूछने पर उसने निवेदन किया जब से वृक्षों की उत्पत्ति हुई है, तब से मैं रहता हूँ। दोनों के पक्ष को सुनकर राजा राम ने निर्णय देते हुए कहा कि घर बगुले का है, क्योंकि वृक्षों की उत्पत्ति मनुष्य से पूर्व हुई है।<sup>71</sup> निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि तुलसीदास राज्य के लिए सरल, निष्पक्ष, सर्वग्राही न्याय व्यवस्था को चाहते हैं। न्यायप्रिय राजा राम ने धर्म की स्थापना हेतु

अन्यायी जनों को सदैव उपयुक्त दण्ड दिया। 'रामचरितमानस' में अनेक स्थलों पर राम के द्वारा अपराधियों को दण्ड दिया गया है। जब शूपर्णखाँ भयंकर रूप बनाकर सीता को भयभीत करती है तो राम उसके नाक—कान कटवा लेते हैं, जयन्त निरपराध सीता के चरण में चौंच मार जाता है तो राम उसके क्षमायाचना करने पर उसे एकनयन कर छोड़ देते हैं। तुलसीदास का इतना विश्वास है कि निर्दोष राम को वन देने के कारण भरत अपनी माँ को भी कठोर वाक—दण्ड देने से नहीं चुकते।<sup>72</sup> इस प्रकार विभिन्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राज्य की और से अपराध के अनुसार कठोर दण्ड के पक्षपाती थे। उनका विश्वास था कि जब तक अपराधी को दण्ड नहीं मिलेगा तब तक समाज में शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है।

सन्धि शब्द का अर्थ है 'मेल'। यह सन्धि या मैत्री के सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से ही राजाओं अथवा राज्यों में देखे जा सकते हैं। प्रत्येक राजा अपने को सबल बनाने एवं समृद्ध करने के लिए सन्धि का आश्रय लेता था। डा० श्यामलाल पाण्डेय के अनुसार—“शत्रु राज्य को निर्बल बनाने और अपने को प्रत्येक प्रकार से सबल बनाने का साधन सन्धि है। सन्धि की अवधि में राजा को अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति कर अपने राज्य सबल बनाने के सुअवसर का उपयोग करना चाहिए।<sup>73</sup> डा० टी०वी० मुखर्जी के अनुसार—“आत्मरक्षा की आवश्यकता सामान्य रूप से पारस्परिक सम्बन्धों को जन्म देती है।<sup>74</sup> अर्थशास्त्र में कहा गया है कि “ दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना ही सन्धि है।<sup>75</sup> बाल्मीकि रामायण में उल्लेख मिलता है कि राजा को शत्रु राजा से हीनबल या समानबल होने पर सन्धि कर लेनी चाहिए।<sup>76</sup> तुलसीदास के काव्य में भी अनेक स्थलों पर 'सन्धि' का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम श्रीराम वनवास जाते समय श्रृंगवेरपुर पहुँचते हैं। यहाँ गुह नाम का एक राजा राज्य करता था। वह निषादकुल का था। श्रीराम को आता हुआ देखकर उसने श्रीराम का स्वागत किया तथा राम को हृदय से लगाकर कहा कि आपके लिए जैसे अयोध्या का राज्य, उसी प्रकार यह राज्य भी है। बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ?<sup>77</sup> फिर अनेक प्रकार के उत्तम अन्न लेकर वह सेवा में उपस्थित हुआ और बोला कि हे महाबाहो मेरे राज्य में आपका स्वागत है। यह सारी भूमि जो मेरे अधिकार मे है, वह आपकी है हम आपके सेवक हैं और आप हमारे स्वामी। आज से आप ही हमारे इस राज्य का शासन करें।<sup>78</sup> उसके स्वागत को स्वीकार करते हुए श्रीराम ने उसका प्रेम से आलिंगन किया।<sup>79</sup> इस प्रकार दोनों में दृढ़ मैत्री स्थापित हुई। निषादराज

ने राम की सहायता का वचन देते हुए कहा कि कोई बात छिपी नहीं है। हम लोग यहाँ से शत्रु की अत्यन्त शक्तिशाली विशाल चतुरंगिणी सेना को भी जीत लेंगे।<sup>80</sup> इस प्रकार राम ने वन जाते समय निषादराज से सन्धि की थी। यह सन्धि राम के लिए किस प्रकार आपत्तिकाल में उपयोगी सिद्ध हो सकी, इसका सबल प्रमाण उस समय मिलता है। जब निषादराज भरत पर सन्देह कर उससे लड़ने की तैयारी करने लगता है। वह भरत की सेना देखकर अपने बन्धुओं से कहता है— भाईयों कैकयी का पुत्र भरत दशरथ की सम्पन्न एवं दुर्लभ राज्य की लक्ष्मी को अकेले ही हड़प लेना चाहता है, इसीलिए वह राम को वन में मार डालने के लिए आ रहा है, परन्तु दशरथनन्दन श्रीराम मेरे स्वामी और सखा हैं, इसीलिए उनके हित की कामना रखकर तुम लोग अस्त्र—शस्त्र से सुसज्जित हो यहाँ गंगा के तट पर मौजूद रहो। इस प्रकार कहते हुए अपनी सेना को सावधान करते हुए वह भरत से लड़ने की पूरी तैयारी कर लेता है।<sup>81</sup> श्रीराम की द्वितीय सन्धि सुग्रीव के साथ होती है। सीताहरण के पश्चात् जब राम रास्ते में जटायु से मिलते हैं तो वह उन्हें किष्किन्धा पर्वत पर सुग्रीव का निवास स्थान बतलाता है। सुग्रीव अपने भाई बालि से अत्यन्त भयभीत है, अर्थात् उस समय राम और सुग्रीव दोनों ही आपत्ति में हैं। अतः दोनों ही एक दूसरे की सहायता की कामना करते हुए सन्धि कर लेते हैं।<sup>82</sup> इस सन्धि का परिणाम भी दोनों मित्रों के लिए अत्यन्त शुभ रहा, क्योंकि सुग्रीव ने बालि को राम से मरवाकर किष्किन्धा का राज्य प्राप्त किया, तो श्रीराम ने सुग्रीव की सहायता से सीता का अनुसंधान और उसकी विशाल सेना से रावण का संहार कर सीता को प्राप्त किया। तुलसी काव्य में तीसरी सन्धि के दर्शन उस समय होते हैं, जब लंकेश्वर रावण का अनुज भाई विभीषण श्रीराम से जाकर मिलता है।<sup>83</sup> राम उसे लंका का राजा बनाने का आश्वासन देते हैं और उसी समय श्रीराम के आदेश से लक्ष्मण विभीषण का राक्षसों के राजा के रूप में अभिषेक करते हैं। इस प्रकार राम और विभीषण की यह सन्धि दोनों की लिए ही अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। श्रीराम विभीषण द्वारा रावण के बल, सेना एवं उसकी अनेक गुप्त बातों का पता लगाने में सफल होते हैं।<sup>84</sup> परिणामतः उनकी रावण पर विजय पाने में अनेक बाधाएँ दूर हो जाती हैं और शीघ्र ही शक्तिशाली रावण का विनाश कर देते हैं, दूसरी ओर इस सन्धि से विभीषण को भी लंका का राज्य मिल जाता है।

**सैन्य व्यवस्था:—**राज्य की सुरक्षा के लिए सैनिक व्यवस्था की अत्यन्त आवश्यकता होती है। बौद्धिक दृष्टि से विकसित होने पर भी व्यक्ति की अनौचित्यपूर्ण इच्छायें एवं स्वार्थ उसे क्रूर कर्म करने के लिये प्रेरित करती हैं। एक राष्ट्र के सत्ताधारी व्यक्ति या शासक वर्ग के अनौचित्यपूर्ण कार्य से दूसरे राष्ट्र को सहज ही हानि हो सकती है। अतः इन अनौचित्यपूर्ण कार्यों को रोकने के लिए एवं उनके प्रतिकार के लिये राज्य को एक सुसंसगठित सेना की आवश्यकता होती है। शुक्रनीति में सेना व्यवस्था के विषय में कहा गया है कि जिस राजा के पास नीति बल एवं सैन्य बल होते हैं, उनके पास लक्ष्मी सर्वतोन्मुखी होकर चली आती है।<sup>85</sup> माहभारत में कहा गया है कि सैनिक सन्तुष्ट और राज्य के प्रति अनुरक्त रहें तभी वे देश की रक्षा कर सकते हैं।<sup>86</sup> तुलसीदास ने भी राज्य की सुरक्षा एवं शान्ति के लिए सैन्य व्यवस्था को अत्यन्त उपयोगी माना है। तुलसी के काव्य में हमें सैन्य व्यवस्था के अनेक उदाहरण मिलते हैं। राजा भानुप्रताप ने अपनी सुदृढ सैन्य व्यवस्था के द्वारा ही समस्त संसार की दिग्विजय के लिए निकला था।<sup>87</sup> राजा दशरथ बारात में साथ जाने के लिए अपने चतुरंगणी सैन्य दल को सुसज्जित करने का आदेश देते हैं।<sup>88</sup> राजा जनक भी बारात की अगवानी के लिए अपूर्व सैन्य बल के द्वारा उपस्थित होते हैं।<sup>89</sup> स्पष्ट है कि युद्ध के अतिरिक्त अन्य उल्लास अवसरों पर भी सैन्य बल का प्रदर्शन होता था, क्योंकि यही राजा की शक्ति का माप दण्ड होता है। वन में भी राम के पास असंख्य सेना थी। उसी के बल पर उन्होंने रावण की अतिसमृद्ध सैन्य-शक्ति से टक्कर ली थी। युद्ध के अन्त में राम कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं—**‘तुम्हारे बल में रावण मारा, तिलक विभीषण कहुँ पुनि सारा।’**<sup>90</sup>

रावण के दूत ने जाकर कहा था कि मैंने सुना है कि राम के सैन्य दल के अठारह पदम तो सेनापति हैं सेना कितनी होगी। रावण ने अपने विशेष सैन्य दल के द्वारा ही दिग्विजय की थी, कही भी उसका विरोधी नहीं रह गया था, सबने उसके सामने सिर झुका दिया था।<sup>91</sup> निषादराज गुह ने अपनी सैन्य व्यवस्था के द्वारा ही भरत को जाते देख कर अपने सैनिकों को आदेश दिया, कि सावधान हो जाओ, डाड ओर नाव जलमग्न कर घाटों को रोक लो, मैं भरत से लोहा लूँगा, जीवित रहते हुए गंगा पार नहीं होने दूँगा।<sup>92</sup> इस प्रकार निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि सुदृढ सैन्य व्यवस्था के द्वारा ही राज्य में शान्ति व्यवस्था स्थापित हो सकती है।

तुलसीदास जी भी राज्य के संचालन में मंत्रिमण्डल की उपयोगिता के अपरिहार्य मानते हैं। उन्होंने रामचरित्रमानस् में चित्रित अनेक राजाओं के अपने मंत्रियों से परामर्श लेते हुए दिखाया है। इससे मंत्रीमण्डल का महत्व स्पष्ट हो जाता है। सेनापति युद्ध विभाग का प्रधान अधिकारी था तथा वह मंत्रीमण्डल का सदस्य होता था। सेनापति के कार्यों के विषय में हमें अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों में जानकारी मिलती है— अर्थशास्त्र में कहा गया है कि— सेनापति को चाहिए कि वह अश्वाध्यक्ष से लेकर पणाध्यक्ष तक के सम्पूर्ण कार्य व्यापार भली-भाँति समझें, सेनापति को हर प्रकार के युद्ध करने, हथियार चलाने ओर आन्वीक्षिकी आदि शास्त्रों में पारंगत होना चाहिए, हाथी, घोड़े और रथ चलाने की भी पूरी योग्यता उसमें होनी चाहिए, चतुररिंगणी सेना के कार्य और स्थान की भी उसे पूरी जानकारी होनी चाहिए।<sup>93</sup> इसके अतिरिक्त उसमें भूमि, युद्धकाल, शत्रुसेना, शत्रुव्यहू का तोड़ना, बिखरी हुई सेना को समेटना, बिखरी हुई शत्रुसेना का मर्दन करना, दुर्ग तोड़ना और उचित समय पर युद्ध के लिए प्रस्थान करना, इन सब बातों को समझने व करने की पूरी क्षमता होनी चाहिए। सेनापति को चाहिए कि युद्ध काल में अपनी सेना को संचालित करने के लिए वह चढ़ाई करने, कूच करने एवं धावा बोलने के लिए बाजे, ध्वजा तथा झंडियों के द्वारा ऐसे इशारों का प्रयोग करें, जिन्हें शत्रु सेना न समझ सके।<sup>94</sup> शुक्रनीति में नीतिसार ने कहा है— सेनापति को कर्तव्य व अकर्तव्य का ज्ञान, शस्त्र-अस्त्र चलाने में निपुण, व्यहू रचना के भेदन की जानकारी तीनों सेनाओं के सैनिकों में उत्साह भरना, राष्ट्रहित के लिए प्राण समर्पित करना, शत्रु सेना की विशेष गुप्तचरों द्वारा सूचना लेना, ये सेनापति के मुख्य कर्तव्य हैं।<sup>95</sup> बाल्मीकि रामायण में सेनापति के कर्तव्यों पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है— 'सेनापति व्यवहार, सेना पर प्रशासन करने में दक्ष तथा शत्रु राष्ट्र की गतिविधियों की जानकारी रखना, प्रजा व राष्ट्रहित के लिए सर्वोपरि उत्सुक रहें, सैनिकों के अस्त्र-शस्त्रों की निरीक्षण करें। न्यायानुसार युद्ध प्रणाली को अपनाएं, ये ही सेनापति के पद पर अभिषिक्त हो सकते हैं। सेनापति को चाहिए कि वह सैनिकों को निर्देश करें कि रथी को रथी से गजारोही को गजारोही से, अश्वारोही को अश्वारोही से, पैदल को पैदल से युद्ध करना चाहिए। हताहत शत्रु यदि अपने राज्य में हो तो उसकी चिकित्सा प्रधान सेनापति का कर्तव्य है।<sup>96</sup> तुलसीदास के काव्य में भी सेनापति के कार्यों पर प्रकाश पड़ता है। रावण द्वारा अपने सेनापति शुक्र को उसके कार्य और दायित्व के विषय में सम्बोधन करता है

कि सेनापति का मुख्य कर्तव्य है कि वह शत्रु पर अपना प्रभाव जमाने के लिए जितना दिखावा करना आवश्यक है, वह करे, परन्तु अपने गुप्त अस्त्र-शस्त्रों का शत्रु को किसी भी तरह पता न लग पाये, इसके लिए पूर्ण सतर्कता अपेक्षित है। अपनी शक्ति बड़ी है यह दिखाने के लिए वह हर ऐसा प्रभाव फैलावे कि शत्रु पक्ष के योद्धा भयभीत हो जाये।<sup>97</sup> रणकुशल सेनापति को चाहिए कि प्रबल शत्रु के आघात को देख सैन्य को पीछे कर स्वयं आगे बढ़े। महाप्रतापी कुम्भकर्ण के प्रहार से अपनी वानर सेना को विचलित देख राम स्वयं नेतृत्व करते हैं, सैन्य दल को पीछे कर स्वयं शत्रु से टक्कर लेते हैं और शत्रु के पराक्रमी सेनापति का वध कर डालते हैं।<sup>98</sup> अतः निष्कर्ष में यही कहा जा सकता है कि सेनापति को अपने कर्तव्य में दक्ष होना चाहिए। शत्रु सेना के बड़े-बड़े प्रसिद्ध वीरों को मौत के घाट उतार दें, कोई नेता शेष न रह जाये, क्योंकि योग्य नेता के अभाव में शत्रु-सेना के मुख मलीन हो जाते हैं और रणभूमि से विमुख योद्धा भाग खड़े होते हैं। कुम्भकर्ण और मेघनाथ के जैसे योग्य सेनापति के अभाव में रावण की सेना में हाहाकार मच जाता है। इस प्रकार सेनापति के द्वारा सेना का सही संचालन हो सकता है, तथा राजा और योग्य राष्ट्र दोनों ही सुरक्षित रह सकते हैं।<sup>99</sup>

**सेना :-** राज्य की सुरक्षा के लिए सैन्यबल का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। कौटिल्य के अनुसार—“ जिस राजा के पास अच्छा सैन्यबल होता है, उसके मित्र तो मित्र ही बने रहते हैं, किन्तु शत्रु तक भी मित्र बन जाते हैं। तात्कालिक आक्रमण पर अथवा शत्रु के द्वारा अभ्यान्तर कोष उत्पन्न करा देने पर मित्र लोग उसका कोई प्रतिकार नहीं करा सकते, प्रत्युत सेना ही ऐसे अवसरों पर काम आती है।”<sup>100</sup> महाभारत में कहा गया है कि जिसके सैनिक सन्तुष्ट , राजा के द्वारा सान्त्वना प्राप्त करने और शत्रुओं को धोखा देने में चतुर हों, वह भूपति थोड़ी-सी सेना के द्वारा भी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेता है।<sup>101</sup> शुक्र नीति में भी सेना के महत्व का तथा सैन्य संगठन का विशद वर्णन मिलता है।<sup>102</sup> माहर्षि बाल्मीकि ने भी सेना के महत्त्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार सेना के बिना राज्य की रक्षा नहीं हो सकती। उन्होंने सेना के पाँच प्रकार बताये हैं— 1. (मित्र राजाओं की सेना) 2. अटवी बल (वन प्रदेशों तथा वन्यजनों से भर्ती की गई सेना) 3. मौलवल (वह सेना जिसे क्षेत्रीय बल में भर्ती किया गया) 4. मृत्यु (केवल वेतन के लिए भर्ती की गयी सेना) 5. दुशद बल— (ऐसे सैनिक जो शत्रु सेना से भाग कर दूसरी और मिल गया हो)।<sup>103</sup>

इस प्रकार तुलसीदास ने भी प्राचीन मनीषियों के समान राज्य की सुरक्षा के लिए सेना के महत्त्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार सेना राज्य का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंग है जिसके बिना उसकी रक्षा नहीं हो सकती। वाह्य आक्रमणों से राज्य की रक्षा करने के लिए सेना की आवश्यकता पड़ती है तो आन्तरिक अशान्ति को दूर करने के लिए भी सेना का सहयोग अपेक्षित होता है। यही कारण है कि तुलसीदास ने अपने काव्यमयी रचना 'रामचरितमानस' में अनेक स्थलो पर सेना की आवश्यकता को महत्त्व प्रदान किया है। राजा प्रतापभानू सेना के बल पर ही अपने राज्य की रक्षा के साथ-साथ अनेक राज्यों को जीतने में सफल होता है। उसका वर्णन करते हुए तुलसीदास लिखते हैं कि राजा प्रतापभानु के पास अपनी चतुरंगिणी सेना थी, जिसमें असंज्य योद्धा थे जो सब के सब रणक्षेत्र में निपुण थे। अपनी सेना को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और गम्भीर बाजे बाजने लगे। दिग्विजय के लिए वह सेना सजाकर चल दिया। अनेक स्थानों पर लडाइयाँ हुईं और राजा ने बलपूर्वक सबको जीत लिया, अपने भुजवल से उसने सातो द्वीपों को अपने वश में करके या राजाओं से कर लेकर उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार समस्त पृथ्वी-मण्डल पर उसका राज्य स्थापित हो गया। यहाँ तुलसीदास ने राज्य के लिए सेना के उपयोग की स्पष्ट घोषणा की है।<sup>104</sup> तुलसीदास ने यह स्पष्ट किया है कि रावण अपने विशाल राज्य की रक्षा चतुरंगिणी सेना से ही कर रहा था। सेना में सैनिक शूरवीर, देशभक्त एवं काल से जुझने वाले होने चाहिए। इसी प्रकार तुलसीदास ने रवरदुषण की विशाल सेना का वर्णन इसी प्रकार किया है राम ने भी वनरों की एक विशाल सेना के द्वारा ही रावण को परजित किया था।

इस प्रकार निष्कण्ठ रूप में यही कहा जा सकता है कि राज्य की सुरक्षा के लिए सैनिक संगठन की आवश्यकता होती है। बैद्धिक दृष्टि से विकसित होने पर भी व्यक्ति की अनौचित्यपूर्ण इच्छाएँ एवं स्वार्थ उसे क्रूर कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं। एक राष्ट्र के सत्ताधारी व्यक्ति या शासक वर्ग के अनौचित्यपूर्ण कार्य से दूसरे राष्ट्र को सहज ही हानि हो सकती है। अतः इन अनौचित्यपूर्ण कार्यों को रोकने के लिए एवं उनके प्रतिकार के लिए प्रत्येक राज्य को एक सुसंगठित सेना की आवश्यकता होती है।

**(ग) सेना के अस्त्र-शस्त्रादि :-** वैदिक काल से ही युद्ध भारतीय राजनीति का अभिन्न अंग रहा है। युद्ध में विजय अस्त्र-शस्त्र के कुशल प्रयोग और रणनीति के सफल संचालन पर निर्भर करती है। युद्धों की बाहुलता ने जहाँ रणनीति को प्रभावित

किया और उन्हें नियमित करने की प्रेरणा दी थी, वहीं युद्ध भूमि में मिलने वाली जय-पराजय ने अस्त्र-शस्त्र के विकास, नूतन प्रयोग और अनुसंधानों को भी समान प्रेरणा दी। तुलसी काव्य में भी ऐसे विचित्र, शक्तिशाली शस्त्रों का वर्णन मिलता है जो अकल्पनीय नहीं लगते हैं। उस काल में जहाँ वानरों द्वारा आदिम मानव के युद्धास्त्रों का प्रयोग किया, उनकी भयानकता आज के बड़े-बड़े भयानक आणविक शस्त्रों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। उस समय शब्दभेदी बाण भी थे जिनसे साधारण अस्त्र व्यर्थ हो जाते थे इन्हें दिव्यास्त्र कहा जाता था। तुलसीदास ने इस युद्ध सामग्री का वर्णन तीन भागों में किया है। आर्य, वानर, राक्षस आदि, आर्य धनुर्विद्या में निपुण थे। उनके पास बाण, विशिक, तीर, नाराच, सायक आदि विभिन्न प्रकार के बाण थे। राम की धनुष टंकार से शत्रु-दल में भय का संचार हो जाता था।<sup>105</sup> इसके अतिरिक्त इनके पास अग्नि बाण भी थे।<sup>111</sup> इन बाणों की सफलता का रहस्य मंत्र बल था। उन्हें संहार अर्थात् मंत्र प्रेरित बाण को पुनः वापिस लौटा लाने की विधि भी भली-भाँति ज्ञात थी।<sup>106</sup> उन्हें बाण में माया को नष्ट करने की अदभुत क्षमता थी।<sup>107</sup> राक्षस धनुर्विद्या में निपुण होते हुए भी मंत्र बल से अनभिज्ञ थे। वे माया युद्ध में अधिक निपुण थे।<sup>108</sup> वे शक्ति, बल, शूल, तलवार, कृपाण, परशु, तोमर, भिंडिपाल, साँगी, मुदगर, त्रिशुल आदि से युद्ध करने में निपुण थे।<sup>109</sup> वानर सेना शारीरिक बल में बढ़ी-चढ़ी होने के कारण वृक्षों एवं पर्वतों-शिखर आदि का प्रयोग करते थे।<sup>110</sup> इसके साथ वानर सैनिक अपने नखों, दाँतों और हाथों से भी प्रहार करते थे। पूँछ में लपेटकर शत्रु को पछाड़ देने में दक्ष थे।<sup>111</sup> चंचल हाथों, थप्पड़ की चोटों से शत्रु के पैरों से माँस नौच लेना, कटकटाकर गम्भीर गर्जना करना, पेट फाड़ डालना, भुजा उखाड़ फेंकना, चरण पकड़ पृथ्वी पर पछाड़ देना, भारी-भरकम शरीर से मर्दन कर डालना उनके स्वभाव का अंग था।<sup>112</sup> इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलसीदास युद्ध के लिए चतुरंगिणी सेना में विश्वास रखते हैं और सेना के लिए विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को स्वीकार करते हैं।

**गुप्तचर :-** प्राचीन काल से ही राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा-रंजन था। प्रजा-पालन हेतु आवश्यक है कि राजा को प्रजा के दैनिक जीवन का पूरा ब्यौरा ठीक-ठीक मिलता रहे। उसके शासन में कोई ऐसी त्रुटि तो नहीं रही है जिसके कारण उसके अधीन प्रजा को क्लेश हो रहा हो अथवा उसके राज्य में कोई ऐसे कर्मचारी तो नहीं हैं, जो अपने कर्तव्यों का विधिवत पालन न कर रहे हों और जिसके कारण प्रजा पीड़ित हो रही हो

अथवा प्रजा में ही कुछ ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह तो नहीं हैं, जो राज्य में प्रजा के सुख और शान्ति में बाधा उत्पन्न कर रहे हों। इस प्रकार राजा को अपनी प्रजा के सुख-दुख के कारणों का विवरण भली-भाँति ज्ञात होते रहना चाहिए। कौटिल्य ने इस विषय में कहा है कि –“ विजिगीषु राजा के लिए आवश्यक है कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट सभी स्थानों पर अपने गुप्तचरों को नियुक्त करें। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि श्रेष्ठ राजा को इन सबके गृहों में भी गुप्तचर नियुक्त करें। राजा को शत्रु की प्रत्येक गतिविधि जानने के लिए किसी प्रलोभन या बहकावे में न फँसने वाले अपने विश्वस्त पुरुषों को ही गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए और उन्हें शत्रु-पक्ष को स्ववश में करने के उपाय भी बताने चाहिए।<sup>114</sup> मनु स्मृति में कहा गया है कि राजा अपनी और शत्रु की वास्तविक स्थिति का पता चरों तथा उनके कार्यों से लगाता रहे।<sup>115</sup> महाभारत में भी इसका समर्थन किया गया है। धृतराष्ट्र से गुप्तचरों के विषय में कणिक ने कहा है कि—“भली-भाँति जाँच परखकर अपने शत्रु के राज्य में गुप्तचर रखे। शत्रु के राज्य में ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे, जो पाखण्ड वेशधारी अथवा तपस्वी आदि हो।”<sup>116</sup> बाल्मीकि रामायण में शूर्पणखा गुप्तचर-व्यवस्था को क्रियाशील रखने की आवश्यकता रावण को समझाती हुई कहती है कि गुप्तचर ही राजा को दीर्घ दृष्टि प्रदान करते हैं।<sup>117</sup> तुलसी के काव्य में भी हमें गुप्तचरों के कार्यों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ‘शुक्र’ लंकेश्वर रावण का प्रसिद्ध गुप्तचर था। विभीषण जब अपमानित होकर शत्रु पक्ष से जा मिला तो रावण शत्रु की गतिविधि जानने के लिए शुक्र के नेतृत्व में अनेक गुप्तचरों को भेजा। उन्होंने कपट से वानरों के वेश धारण कर गुप्त रूप से शत्रु सैन्य में जाकर सबकुछ देखा।<sup>118</sup> परन्तु एक दिन वे अपने को छिपा न सके, उनका रहस्य उद्घाटित हो गया और वानरों ने उन्हें खूब प्रतांडित किया। लक्ष्मण के समझाने पर वानर शान्त हो जाते हैं। तब लक्ष्मण ने उन्हें अपने निकट बुलाया और बन्धन मुक्त कर रावण के लिए पत्रिका दी तथा मुँह से सन्देश देने के लिए भी कहा।<sup>119</sup>

शुक्र रावण के दरबार में उपस्थित होकर विभीषण के विषय में कहता है कि महाराज? शत्रु पक्ष के राम ने उसका राजतिलक कर दिया है और आप मेरी कुशलता की बात पूछते हैं तो मुझे शत्रु पक्ष का समझकर मेरी बहुत दुर्गति की, एक की शपथ लेने पर ही मुझे किसी प्रकार जीवित छोड़ा।<sup>120</sup> हे नाथ शत्रु की सेना के विषय में सुनिये ‘

वदन कोटिसव बर्तन जाई, वह असंख्य है।<sup>121</sup> रंग के वानर और जामवन्त के आनन अति विकट होकर भयावने हैं। गुप्तचर व्यवस्था का दूसरा उदाहरण जब मिलता है कि लक्ष्मण—मेघनाद के युद्ध में लक्ष्मण मुर्च्छित हो जाते हैं तो गुप्तचर यह सारा वृत्तान्त रावण को बता देते हैं।<sup>122</sup>

अद्भुत पराक्रमी तथा नीति निपूण हनुमान भी एक दक्ष गुप्तचर प्रतीत होते हैं। इस विषय में रामदास गौड़ लिखते हैं कि मारुति भी कैसे जबरदस्त चर थे। लंका में जाकर 'मन्दिर—मन्दिर प्रतिकर सोधा' एक भी घर न छोड़ा, लंका का कोना, चप्पा—चप्पा देख लिया। विभीषण को वहीं पर अपने पक्ष में कर लिया। बस काम बन गया। सीता को आश्वासन देकर जान बूझकर उत्पात किये कि रावण के दरबार तक पहुँच गये। रावण की सेना का पूरा भेद लेना था, उसकी बुद्धि की थाह लेनी थी, मौके की बात से चूके नहीं। आग की आग लगाई और ऊपर नीचे तक दुर्गम दुर्ग को छान डाला, तब लौटा। यह देवताओं का सबसे बड़ा बुद्धिमान और बलवान चर था। नागमाता सुरसा द्वारा इसकी परीक्षा पहले ही हो चुकी थी। इस गुप्तचर के काम पर वेदों, नागों और मानवों को पूरा भरोसा था।<sup>123</sup> इस बात का समर्थन करते हुए श्री नेवलकर ने कहा है कि हनुमान कूटनीति में पारंगत था।<sup>124</sup>

जनकपुरी में भी कुशलचर व्यवस्था थी। राजा जनक कौशलपति दशरथ के स्वर्गवास की सूचना प्राप्त कर अति दुखी हो उठे, मृत्यु का कारण कैकयी का षडयंत्र जानकर उन्होंने कुशल गुप्तचर भरत के सदभाव और दुर्भाव की जानकारी लेने के लिए भेजे थे।<sup>125</sup> तुलसी के काव्य में गुप्तचरों के अलावा दूतियों का भी उल्लेख मिलता है। हनुमान के भीषण उत्पात तथा लंका—दहन के प्रलयकारी दृश्य से भयभीत लंका निवासी सशंकित रहते हैं कि अब जाने क्या होगा। सब अपने—अपने घरों में विचार करते थे कि अब राक्षस जाति की खैर नहीं। श्रीराम ससैन्य समुद्र पार कर लंकापुरी में प्रविष्ट हो गए हैं, इस समाचार को पाकर वह पुरानी स्मृति पुनः सजीव हो उठी। उन्होंने सोचा कि जिस राम के दूत का पराक्रम वर्णन करते नहीं बनता उसके स्वयं के प्रवेश के करने पर क्या होगा? दूतियों के मुख से यह बात सुनकर मन्दोदरी अधिक व्याकुल हो उठी और अपने पति रावण को समझाने का प्रयास करती है।<sup>126</sup>

**मंत्री:**—तुलसीदास ने राजनैतिक व्यवस्था में मंत्री के महत्त्व को भी स्वीकार किया है। तुलसीदास ने राजा दशरथ, राम, सुग्रीव एवं रावण आदि के मंत्रियों का वर्णन किया

है। राजा दशरथ अपने समस्त प्रमुख राजकर्म मंत्रीयो की मंत्रणा से करते है। राम के राज्यभिषेक के समय मंत्रीयो से परामर्श लेते है। दशरथ के कुल गुरु वशिष्ठ जी के अतिरिक्त सुमंत भी आते हैं। सुग्रीव के सचिव हनुमान थे। जब राम सीता का अन्वेषण करते हुए ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँचते है तो वहाँ सुग्रीव हनुमान के साथ रहते थे। हनुमान को सुग्रीव का सचिव कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने मंत्री या सचिव को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है, क्योंकि राजा के बाद राज्य के कार्य की व्यवस्था का भार मंत्रीयो के ऊपर ही निर्भर होता है। रामचरितमानस से पता चलता है कि मंत्री राजाओं को मंत्रणा भी देते थे। राम के राज्यभिषेक की मंत्रणा के समय समस्त मंत्रीयो की अनुमति द्वारा ही राजा अपनी स्वीकृति प्रदान करते है।<sup>127</sup> राजा के आदेशों का प्रजा द्वारा पालन कराना एवं अन्य अनुशासनात्मक कार्यों का भी मंत्री ही निरीक्षण करते है। तुलसी काव्य रामचरितमानस मे रावण के माल्यवान नामक मंत्री और प्रतापभानु का धर्म रूचि नामक मंत्री है जो राजा के समस्त कार्यों में सहयोग प्रदान करते है।<sup>128</sup> महाभारत के अनुसार राजाओं की विजय मंत्रियों के परामर्श पर अश्रित होती है।<sup>129</sup> कौटिल्य का कथन है कि राज्य—रूपी रथ राजा रूपी एक पहिए से नही चल सकता, राज्य के संचालन—हेतु दूसरे पहिए की आवश्यकता रहती है, वह धुरी रूप में दूसरा पहिया है। मंत्री<sup>130</sup>शुक्रनीति में कहा गया है कि मंत्री राजा की आँखे है।<sup>131</sup>कालिदास के रघुवंश में उल्लेख मिलता है कि राजा मंत्रियो से मन्त्रण करता है तथा बाहय नीति के सम्बन्ध में परामर्श लेता है।<sup>132</sup> इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में राजा निरकुंश नही था, वह मंत्रियों व मंत्रीपरिषद के निर्णय को मानता था।

### **मंत्रियो के गुणः—**

राज्य की मंत्रीपरिषद जैसी उपयोगी संस्था के सदस्यो में निःसन्देह कतिपय गुणो का होना आवश्यक है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जो समस्त प्राणियों पर प्रभाव डाल सके तथा पद के सर्वथा उपयुक्त हो उसको ही मंत्री पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए।<sup>133</sup> महाभारत के अनुसार जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, के वशीभूत हो निज धर्म परित्याग नही करते, जो सब कार्यों में दक्ष है, जो कुलीन उत्तम स्वभावत से युक्त क्षमावान, मेधावी, भूर, विद्वान कार्य—विवेक में निपुण राजकार्यों के अधिकारी होने कल्याण की बृद्धि में रत सच्चे हितैषी तथा अपने ही राज्य के निवासी हों, वही मंत्री चुने जाने के अधिकारी है।<sup>134</sup> कौटिल्य का कथन है कि वे स्वदेशी कुलीन, बुद्धिमान,

वाकपट्ट, उत्साही प्रभावशाली द्रढ राजभक्त, शीलवल आरोग्युक्त, धैर्यशाली, निरभिमानी सौम्य, पवित्र हृदय कष्टसहिष्णु तथा सर्वोपधाशुद्ध, पूर्णतया धार्मिक, निर्लोभी संयमी एवं निर्भीक होने चाहिए।<sup>135</sup>शुक्रनीति के अनुसार मंत्रीगण कुल-शील में बड़े, चढ़े, राजभक्त हितैषी कष्टों से भयभीत न होने वाले, धर्मात्मा, कुमार्गगामी राजा को सत्पथ ले जाने वाले, काम, क्रोध एवं आलस्य से रहित हो।<sup>136</sup>बाल्मीकि रामायण में कहा गया है क यथार्थ मंत्री वही है जो निज तथा शत्रु के बल स्थिति, अवनति एवं उन्नति को भलीभाँति समझ-बुझ कर स्वामी के लिए हितकार सम्मति देता है।<sup>137</sup>तुलसी काव्य में भी मंत्रियों के गुणों पर प्रकाश डाला गया है। राज भानुप्रताप के मंत्री धर्मरुचि के विषय में कहा गया है।

**नृप हित कारक सचिव सयाना, नाम धर्मरुचि शुक्र समान।<sup>138</sup>**

**सचिव धर्मरुचि हरिपद प्रीति, नृप हित हेतु सिजन नितनीति।<sup>139</sup>**

इस प्रकार स्पष्ट है तुलसीदास की दृष्टि में, मंत्री राजा के कल्याण में रत, नियुक्त, शुक्राचार्य के समान विद्वान मेधावी व्यवहार कुशल राजनीति दक्ष, भगवान के चरणों में प्रीति रखने वाला अर्थात् प्रजाप्रेमी प्रजारक्षक तथा राजा को हित की सच्ची नीति सिखाने वाला होना चाहिए।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मंत्री राजा का सबसे बड़ा सहायक होता है। राजा राज्य का प्रधान अवश्य था लेकिन राजनीतिक व्यवस्था मंत्रियों के ऊपर ही निर्भर करती है।

**विदेश नीति :-**

**विग्रह:-**संधि के पश्चात् षाड्गुण्य में 'विग्रह' को स्थान दिया गया है। कौटिल्य के अनुसार एक दूसरे के अपकार में लग जाना ही विग्रह है।<sup>140</sup> कामान्दक के अनुसार भी क्रोध से संतप्त दो व्यक्तियों का परस्पर अपकार में संलग्न होना ही 'विग्रह' है।<sup>141</sup> सांसारतः विग्रह का तात्पर्य है, दो राजाओं में परस्पर बैर होना जिसका परिणाम युद्ध होता है। विजिगीष समीप स्थित राज्य स्वभावतः शत्रु होते हैं। साधारणतः इन्हीं शत्रु राजाओं में विग्रह उत्पन्न होता इसी का परिणाम होता है युद्ध। दीक्षितर ने तो विग्रह की स्थिति को एक प्रकार से कूटनीतिक युद्ध माना है।<sup>142</sup>महाभारत के अनुसार विग्रह अर्थात् बैर पाँच कारणों से उत्पन्न होता है—स्त्रियों के लिए, वास्तु अर्थात् भूमि के लिए कठोर, वाणी के कारण, व्यक्तिगत द्वेष के कारण और किसी समय किए हुए अपराध के कारण

आदि। <sup>143</sup>

वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि राम ने युद्ध हेतु समस्त सेना को तैयार करके ही आक्रमण का भय दिखाने के लिए युवाराज अंगद को रावण के पास दूत रूप में भेजा था। <sup>144</sup> इस प्रकार तुलसी काव्य में भी हमे विग्रह नीति के उदाहरण मिलते हैं। राम की वानर सेना के प्रमुख सेनापति व दूत हनुमान जी का लंगा में प्रवेश व रावण को श्रीराम की सैन्यबल व उनकी विशेषताओं के बारे में बताना विग्रह नीति का उदाहरण है।

**यानः—**‘यान’ का अर्थ है अभियान। अर्थात् एक राजा का दूसरे राजा के राज्य पर आक्रमण के लिए जाना ही यान कहलाता है। यह नीति उस समय उपयुक्त है जब अपने राज्य में पर्याप्त शक्ति हो। वैदिक साहित्य की ऋचाओं से उल्लेख मिलता है कि विधि—विधान के अनुसार यान की तैयारी करें। ब्राह्मण साहित्य में अभियान का सबसे उपयुक्त समय चित्रा नक्षत्र माना गया है। यदि विजिगीषु यह समझे कि शत्रु के दूर्ग और जनपद आदि का विनाश एकमात्र अभियान करने से ही सम्भव हो सकता है और स्वयं विजय का दूर्ग जनपद पूर्णतः सुरक्षित हो तभी यान का अवलंन लेना चाहिए। तुलसी काव्य में राम और रावण का युद्ध यान का धौतक है। रामचरितमानस में भी श्रेष्ठ नक्षत्र से ही यान करने का आदेश दिया गया है। राम ने कहा है कि आज उत्तरा फाल्गुनी है, कल चन्द्रमा का हस्त नक्षत्र योग होगा, इसलिए आज ही सेना प्रस्थान करेगी। <sup>145</sup>

**आसनः—**‘आसन’ से तात्पर्य है तटस्थता की नीति, जिसका प्रयोग उस समय करना चाहिए जब न दूसरा हमें परास्त कर सकता और न हम दूसरो पर विजय पा सकते हैं। अपनी स्थिति क्षीण है तो अपनी स्थिति को बनाये रखने का प्रयत्न श्रेयस्कार होता है। अर्थात् यह नीति उस समय उपयुक्त है जब राज्य अपने में पर्याप्त शक्ति में हो। इसकी तुलना आधुनिक युग के शीतयुद्ध से की जा सकती है। तुलसी काव्य में सुग्रीव का वालिवध की भावना से श्रस्यमूक पर्थत पर रहना ‘आसन’ का ही उदाहरण है। <sup>146</sup> राम का भी सुवेल पर्वत पर आसीन होना ‘आसन’ का ही धौतक है। <sup>147</sup> इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है। कि यदि शत्रु को परास्त करने में विजिगीषु पूर्ण रूप से सक्षम न हो तो बलशाली राजा पर कभी भी आक्रमण न करे। अर्थात् समयानुसार ‘आसन’ की नीति को ही अपनाया युक्त है।

**द्वैधीभावः—**द्वैधीभाव का शाब्दिक अर्थ है दोहरी नीति या दुरंगी चाल। इसका आध

ार कपटनीति है— शत्रु अथवा अन्य राजाओं से एक दूसरे के प्रति सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करना। यह नीति अव्यधिक सर्तकता से व्यवहारित की जाती है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में उल्लेख किया है कि— यदि सामत को अपने साथ मिलाने में विजिगीषु को विश्वास न हो तो द्वैधीभाव प्रयोग के द्वारा वह पीछे या बगल में रहने वाले किसी एक सांमत को धन देकर, यदि सेना कम हो तो सेना ले और यदि धन कम हो तो सेना देकर धन प्राप्त करने का यत्न करे।<sup>148</sup> तुलसी काव्य में भी श्रीराम ने सुग्रीव और बालि तथा विभीषण और रावण के मध्य दैधीभाव का पालन किया था।

**कर व्यवस्था:**—राज्य की सुरक्षा, व्यवस्था एवं उन्नति के लिए धन की आवश्यकता होती है। अतः राज्य के स्थायित्व के लिए अर्थ का अत्याधिक महत्त्व है। अर्थ को धर्म और काम का मूल माना गया है। लेकिन राजा को प्रजा से किस प्रकार कर लेना चाहिए इसके बारे हमारे धर्म शास्त्रों में विभिन्न प्रकार का उल्लेख मिलता है। महाभारत में कहा गया है कि राजा को धर्म—कर लेने तथा प्रजा के हितकर कार्यों पर व्यय का ही अधिकार है। कर को राजा का वेतन कहा गया है जिसे प्रजा पालन में नियोजित करना है।<sup>149</sup> शुक्रनीति में कथन है कि जो राजा नीति—धर्म सम्मत मार्ग— का परित्याग कर प्रजा उत्पीडन द्वारा धन संचय करता है वह नाश को प्राप्त होता है।<sup>150</sup> कौटिल्य ने धान्य के षणभाग और पण्य के दसवे भाग आदि को राजा का मागधेय बताकर यह कहा है कि इससे राजा प्रजा का योगक्षेम सम्पादित करते है।<sup>151</sup>

महाभारत में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को यह भी बताते हैं कि कर लेते हुए राजा को ध्यान रखना चाहिए कि अपने तथा राज्य के मूल का उच्छेदन हो अर्थात् अधिक कर नही लेना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से प्रजा राजा के विरुद्ध हो जाती है। और आगे कर की प्रप्ति सम्भव नहीं रहती। राज्य का क्षय न चाहने वाले राजा को बछड़े के समान राष्ट्र का दोहन करना चाहिए। जिस प्रकार यदि बछड़े को यदि पर्याप्त दूध पीने दिया जोय तो वह बडा, होकर अधिक बलवान हो जायेगा और आगे अधिक बोझ उठाने में समर्थ हो सकेगा, इसी प्रकार कर इस ढंग से लिया जाये। कि प्रजा की अर्थिक स्थिति सुद्रुत बनी रहे और वह भविष्य में कर देने समर्थ हो। एक अन्य स्थान पर भी प्रकाश डाला गया है कि जैसे बछडा माता के स्तन को न काटकर केवल दूध दोहन करता है और जैसे मधुमक्खी पुष्प से मधु का पान करते है वैसे ही राजा राष्ट्र से ग्रहण करे।<sup>152</sup> कालिदास राजा दिलीप का वर्णन करते हुए वताते है कि प्रजा के कल्याण हेतु

राजा प्रजा से कर लेता था जैसा कि सहस्रगुना बरसाने के लिए सूर्य कर लेता है।<sup>153</sup>

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी कर-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। चित्र कूट मिलन प्रसंग में श्रीराम भरत को कहते हैं कि मुखिया-राजा-का कर्तव्य है कि वह मुख के समान आचरण करे अर्थात् वह कर द्वारा प्रजा से जो कुछ भी ग्रहण उसे अपने पास न रखे, प्रजा के योग्य प्रतिनिधियों को सौंप दें और स्वयं यह सर्तक होकर देखें कि समस्त प्रजा का यथोचित पालन हो रहा है अथवा नहीं। कर ग्रहण ओर कर से प्राप्त धन के विभाजन में विवेक अपेक्षित है, जिस प्रकार भोजन विवेक के साथ मुख को करना चाहिए न इतना अधिक कि शरीर अजीर्ण हो जाये और न इतना न्यून मात्रा में कि शरीर रूग्ण हो जाये उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह न तो इतना कर ले कि प्रजा की पीड़ा हो और न इतना न्यून कि शासन -व्यवस्था दुर्बल हो जाये। उचित मात्रा में शरीर के लिए हितकर पौष्टिक पदार्थों के सेवन के समान जिनसे कर लेना उचित है उन्हीं से लिया जाये।<sup>154</sup> शास्त्रीय मर्यादा अंग न हो। जैसे शरीर में रक्त का विभाजन अंगों की आवश्यकतानुरूप होता रहता है, तब तक शरीर स्वस्थ रहता है, यदि कहीं एक स्थान पर रक्त एकत्र हो जाता है तो वह भाग फूल जाता है, उसका ऑपरेशन करके ठीक करना पड़ता है, उसी प्रकार धन के सम-विभाजन से कार्य नहीं चलता, आवश्यकतानुसार योचित विभाजन किया जाये। देखना है कि राज्य के सभी व्यक्तियों का पोषण हो, कोई भी उससे वंचित न रहे। अन्यत्र एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि राजा को सूर्य के समान अप्रत्यक्ष रूप से कर लेना चाहिए। सूर्य जैसे अपनी किरणों से जल खींचता है, और उसी जल को बरसाकर सबको प्रसन्न कर देता है।<sup>155</sup>

अतः निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि राजा प्रजा से लोक कल्याण हेतु कर की वसूली करे, धन समाप्ति का है, क्योंकि समाप्ति अमर है वह व्यक्ति की नहीं, क्योंकि व्यक्ति विनाशशील है। इस प्रकार राजा को पितृतुल्य के समान प्रजा का पालन करना चाहिए।<sup>156</sup>

\*\*\*\*\*

## संदर्भ सूची

1. डॉ० झारखण्ड चौबे— 'इतिहास दर्शन' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ० 33
2. शेखर शर्मा— हिन्दी साहित्य का इतिहास, शारदा प्रकाशन दिल्ली, 1962, पृ० 14 पर उद्धृत
3. वही, पृ० 15 पर उद्धृत
4. डॉ० ए०एस० अल्लेकर— — स्टेट एण्ड गर्वमेण्ट इन एन्सेन्ट इण्डिया, नई दिल्ली, पृ० 310
5. तुलसीदास— रामचरित्रमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० 2045, पृ० 121
6. डॉ० रामेश्वर प्रसाद गुप्त— बाल्मीकि रामायण में राजनीतिक तत्व, ईस्टर्न बुक लिंकर्स प्रकाशन जवाहर नगर, नई दिल्ली, 1995, पृ० 100
7. वही, 105
8. तुलसीदास— रामचरित्रमानस, किष्किन्धा काण्ड, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ० 633 दोहा (11)
9. डॉ०पी०सी० धर्मा— ' रामायण पॉलिटी' दी मद्रास जनरल, 1941, पृ० 141
10. मनुस्मृति— अनुवादक सुरेन्द्र कुमार, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली सं० 2021 अध्याय 7, श्लोक 12, पृ० 289
11. तुलसीदास— रामचरित्रमानस बालकाण्ड 10/13, पृ० 182
12. महाभारत , शान्तिपर्व, अध्याय 20, श्लोक 47, पृ० 1119
13. वही, पृ० 1104
14. भागवत गीता, सं० 2043, पृ० 10, श्लोक 26
15. डॉ० चरणदास शर्मा— तुलसीकाव्य में नैतिक मूल्य, भारतीय ग्रन्थ निकेतन लाजपतरा य मार्केट दिल्ली, 1971, पृ० 235
16. विदुर नीति सम्पादक सत्यवीर शास्त्री, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2010, पृ० 45

17. बाल्मीकि रामायण औरिएंटल इंस्टीट्यूट बडौदा, 2/2/27
18. वही, 28/29, पृ0 138
19. शुक्रनीति, श्लोक 17, पृ0 216
20. तुलसीदास- रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड 4/170, पृ0 173
21. वही उत्तराकाण्ड 17/185
22. वही लंकाकाण्ड 7/310
23. अर्थवेद 16/8/2 दयानन्द संस्थान हरध्यान सिंह मार्ग दिल्ली, 7/189 सं0 2031
24. वही, 7/91/1
25. शुक्रनीति , मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1/24/4
26. महाभारत शान्तिपर्व 57/33
27. वही, 59/35
28. कामान्दक, नीतिसार अनुवादक पं0 गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरिज त्रिवेन्द्रम/  
अध्याय 1,पृ0 59-60
29. कालिदासकृत रघुवंश अध्याय 1/24
30. बाल्मीकि रामायण गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2025 पृ0 100/47/48
31. तुलसीदास- रामचरित्रमानस उत्तरकाण्ड 2/375
32. वही, 8/43
33. वही, 307/8/5441
34. वही 308/7/590
35. हीरालाल चटर्जी- 'इन्टरनेशनल रिलेशन इन एनसेण्ट इण्डिया', पृ0 51 पर उद्धृत
36. अर्थशास्त्र-अनुवादक वाचस्पति गैरोला चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन दिल्ली, 2002,  
1/18/187

37. बाल्मीकि रामायण , 5/539. ऋग्वेद— सं० गोपाल प्रसाद कौशिक, गंगा बुक डिपो  
मथुरा अध्याय 1/12
38. ऋग्वेद, 5/33
39. तैत्तरीय संहिता 2/5/8
40. महाभारत शान्तिपर्व, 26/85
41. शुक्रनीति अनुवादक महेन्द्र मित्तल मनोज पब्लिकेशन्स चाँदनी चौक दिल्ली, 2007,  
2/86
42. कामान्दकीय नीतिसार अनुवादक पं० गणपति शास्त्री त्रिवेद्रम संस्कृत सीरिज त्रिवेन्द्रम  
13/18
43. अर्थशास्त्र अनुवादक वाचस्पति गैरोला, 12/666
44. मनुस्मृति अनुवादक सुरेन्द्र कुमार— आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, 7/65/66
45. महाभारत, 26/27/85/86
46. बाल्मीकि रामायण युद्धकाण्ड, 18/20
47. तुलसीदास— रामचरित्रमानस किष्किन्धा काण्ड, 4/25
48. वही, 3/15/6
49. वही सुन्दर काण्ड , 5/6/6
50. वही, 6/8/25
51. वही, 3/7/24
52. यजुर्वेद गंगा बुक डिपो, मथुरा, 20/9
53. महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 57/11
54. शुक्रनीति अनुवादक महेन्द्र मित्तल, 2/55
55. सूरदास—सूरसागर जयपुर, पुस्तक सदन, पृ० 53,
56. मनु स्मृति , 2/292

57. अर्थशास्त्र , 37 / 177
58. रामचन्द्र शुक्ल-गोस्वामी तुलसीदास नागरी प्रचारिणी सभा काशी, 1999, पृ0 46-47
59. राजपति दीक्षित- 'तुलसीदास और उनका युग' ज्ञान मण्डल, लि0, वाराणसी, सं0 1998, पृ0 52-53
60. तुलसीदास-रामचरित्रमानस, अयोध्याकाण्ड 11 / 15
61. वही, 4 / 173
62. वही, 5 / 179
63. वही, 6 / 330
64. डॉ0 श्यामलाल पाण्डेय- कौटिल्य की राज व्यवस्था, पवन प्रिंटिंग प्रेस लखनऊ, 1999, पृ0 63
65. विदुर नीति अनुवादक महेन्द्र मित्तल मनोज पब्लिकेशन्स दिल्ली, 2010, 5 / 165
66. ऐतेरेय ब्राहमण 8 / 12 / 535
67. बाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2025, 1 / 2 / 13
68. मनु स्मृति, 7 / 23
69. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, 5 / 58
70. वही 2 / 168 / 1-4
71. तुलसीदास, गीतावली, गीताप्रेस गोरखपुर, 24 / 35
72. तुलसीदास, विनयपत्रिका, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ0 244
73. डॉ0 श्यामलाल पाण्डेय- भारतीय राजशास्त्र, हिन्दी समिति सूचना विभाग लखनऊ, 1964, पृ0 213-14
74. डॉ0 टी0वी0 मुखर्जी- इण्टर रिलेशन इन एनसेन्ट इण्डिया मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1967, पृ0 46
75. वाचस्पति गैरोला- अर्थशास्त्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, दिल्ली, 2009, 1 / 5 / 495

76. बाल्मीकि रामायण, 4/3/40
77. तुलसीदास रामचरित्रमानस, अयो0काण्ड 15/232
78. वही, लंकाकाण्ड, 15/235
79. वही, बालकाण्ड, 7/32
80. वही, किष्किन्ध काण्ड, 6/35
81. वही, अरण्यकाण्ड, 5/39
82. वही, उत्तराकाण्ड, 7/42
83. वही, उत्तराकाण्ड, 6/49
84. वही, लंकाकाण्ड, 5/52
85. शुक्रनीति अनुवादक महेन्द्र मित्तल, भारतीय राजनीति प्रकाशन जयपुर, 2013, पृ0 241
86. महाभारत गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2033, 5/48
87. तुलसीदास रामचरित्रमानस, सं0 2029, 1/12/68
88. वही, 5/36
89. वही, लंकाकाण्ड, 4/149
90. वही अयो0 1/2/161
91. अर्थशास्त्र अनुवादक वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,
92. अर्थशास्त्र वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 33/4/287
93. वही, 4/238
94. वही, 5/239
95. शुक्रनीति- मनोज पब्लिकेशन्स दिल्ली,2007, पृ0 87/88/114
96. डॉ0 रामेश्वर प्रसाद गुप्त, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1985, पृ0 218
97. रामचरित्रमानस, तुलसीदास, 56/58
98. वही, 6/7/91

99. वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी,  
सं० 2009, 1/25
100. वही, 6/9/96
101. महाभारत , 5/48
102. शुक्रनीति, 4/2/30
103. बाल्मीकि रामायण, 5/6/195
104. तुलसीदास-रामचरित्रमानस, 5/7/80
105. वही, बालकाण्ड 5/242
106. वही, अरण्यककाण्ड, 19/340
107. वही, लंकाकाण्ड, 6/63
108. वही, 1/3/63
109. वही, 6/8/60
110. वही, 9/9/91
111. तुलसीदास-कवितावली, 351
112. तुलसीदास रामचरित्रमानस, 5/6/105
113. कवितावली-तुलसीदास, पृ० 41
114. वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्र, 1/25
115. मनु स्मृति अनुवादक सुरेन्द्र कुमार, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली, सं० 2006,  
9/298
116. महाभारत गीता प्रेस गोरखपुर, सं० 2032, 5/38
117. बाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० 2033, 33/546
118. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, 8/54
119. वही, सुन्दर काण्ड, 206/54

120. वही, 2-4/56
121. वही, 6/58
122. वही, लंकाकाण्ड, 8/59
123. रामदास गौड, रामचरित्रमानस की भूमिका, राधा पब्लिकेशन्स, आगरा, 1990, पृ0  
73-74
124. नवेलकर- न्यू एप्रोच टू रामायण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1998, पृ0 132
125. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, 4/8/137
126. वही,
127. वही,
128. वही, 2/170
129. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, सं0 2029, 5/28
130. वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्र सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2009, 15/60/62
131. शुक्रनीति, अनुवादक डॉ0 महेन्द्र मित्तल, मनोज पब्लिकेशन्स चाँदनी चौक दिल्ली,  
2009
132. रघुवंश, 1/267
133. ऋग्वेद दयानन्द संस्थान, हरध्यान सिंह मार्ग दिल्ली, 2031, 10/127
134. महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, सं0 2029, 80/26/30
135. वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी
136. शुक्रनीति , 1/1/9/10
137. बाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस गोरखपुर, सं0 2024, 24/21
138. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, 1/142
139. वही, बालकाण्ड, 3/183
140. अर्थशास्त्र, वाचस्पति गैरोला,

141. कामान्दक नीतिसार, आर०एल० मिश्र कलकत्ता, 1974, 10/9
142. 'वार इन शिएंट इण्डिया' अनुवादक वी०आर० दीक्षितर, श्याम प्रकाशन, दिल्ली, 1948,  
पृ० 317-379
143. महाभारत, 13/42
144. बाल्मीकि रामायण, 17/37
145. तुलसीदास, रामचरित्रमानस, 5/3
146. वही, किष्किन्धा, 4/2
147. वही, लंकाकाण्ड, 6/38
148. अर्थशास्त्र अनुवादक श्यामशास्त्री, मैसूर, 1924, 5/39
149. महाभारत, 71/11/14
150. शुक्रनीति डॉ० महेन्द्र मित्तल, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2009, 7/144
151. अर्थशास्त्र, वाचस्पति गैरोला, 8/170
152. महाभारत, 5/67/68
153. वही शान्तिपर्व , 6/88/20/34
154. कालिदास, रघुवंश, जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर, सं० 1998, 1/18
155. तुलसीदास, 12/3/6
156. तुलसीदास, दोहावली, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० 1998, पृ० 507